फुटपाथ

(सामाजिक उपन्यास)

राधाकृष्ण

बर्म्मन साहित्य निकेतन
बाँकीपुर, पटना

मूल्य १)

प्रकाशक—
पी० के० बर्म्मन
बर्म्मन-साहित्य-निकेतन,
बाँकीपुर, पटना

प्रथम वार—१५००

मुद्रक—
बी० के० बर्म्मन
यूनिवर्सिटी प्रेस
बाँकीपुर, पटना

दो बात !—

बस, दो बात मुझे कहनी है। दो ही बात कहूँगा।

'फुटपाथ' मेरा पहला उपन्यास है। यह तो आपके आगे है ही। इसमें क्या है यह आप स्वयँ देख लें। इसके विषय में मैं एक बात भी नहीं कहूँगा। जरूरत भी नहीं है।

मैंने सन्, ३० से लिखना आरम्भ किया था। उसी समय से मेरी कहानियाँ छपने और प्रशंसित होने लगी थीं। चाहता तो बहुत पहले ही कोई उपन्यास लिख कर आपके आगे रख देता ; लेकिन मुझ से वैसा नहीं हो सका। न मुझ में कोई खास यशोलिप्सा थी, न मैं यही गिनना चाहता था कि मेरी कितनी किताबें छपीं और न मैं मुफ्त-खोर और परोपजीवी प्रकाशकों के हाथ अपने आपको सस्ते में सौंप देना चाहता था। मैं तो साहित्य क्षेत्र से उदासीन होकर एक प्रकार से हट ही गया था। यह किताब भी न स्वान्त: सुखाय लिखी गई है और न यस्यार्थ। मेरे मित्रों ने जोर देकर मुझ से इसे लिखवाया है। यह मेरी पहली बात है।

यश और आदर लेखकों के लिये एक बड़ी आसान चीज हो गई है। सभाओं में उनकी अभ्यर्थना की जाती है, गले में मोटे-मोटे हार डाले जाते हैं। सुना है कहीं-कहीं उनकी आरती भी उतारी जाती है। मैं न इन बातों को आदर मानता हूँ और न इन फिजूल बातों का

कोई जरूरत ही समझता हूँ। मैं अपने पाठकों से यही चाहता हूँ कि यदि आप मेरी रचना पसन्द करते हैं तो उसे दाम देकर खरीदें यही लेखकों के लिये उत्साह समझूँगा और समझूँगा कि आ वास्तव में लेखक के प्रति दिलचस्पी रखते हैं। यही मेरी दूसर बात है।

भट्टाचार्यलेन, राँची
४ मई, १९४०

राधाकृष्ण।

१

दुनिया में बहुतेरी बातें चल पड़ती हैं। वे बातें कब चलीं, कैसे चलीं; और उन बातों में सचाई का कोई अंश है भी या नहीं, इन बातों का पता लगाने कौन बैठे ? और बिना पता लगाये सत्यासत्य का विवेचन कैसे हो सकता है ? मगर कोई इसी पर तुल बैठे कि वह इस तरह की छानबीन करेगा ही, तो भी वह किसी खास निष्कर्ष पर पहुँच सकेगा या नहीं इसमें काफी सन्देह की गुंजाइश है। बहुत-सी बातें तो ऐसी होती हैं जिनका न सिर होता है और न पैर; लेकिन वे चल पड़ती हैं। और सिर्फ चल ही नहीं पड़तीं, बल्कि समय की सीमा के बीचोबीच अपना एक स्थान भी बना लेती हैं। शायद इसी बात का अपवाद बनने के लिये, बहुत-से लोगों का अनुमान है कि केवल सत्य की ही कायमियत होती है। जो हो, लेकिन यह भी किसी परिणाम पर पहुँचना नहीं हो सकता; क्योंकि बहुत-सी बातें ऐसी भी होती हैं जिनकी बुनियाद झूठी-सी होने पर भी पता लगाने पर मालूम होता है कि उनका उत्स सत्य घटना से है। इसी कारण इस विवाद में पड़ना ठीन नहीं होगा कि उस लाला वंश के लोग किसी समय हाथी पर चला करते थे। न जाने वह इतिहास के किस युग की घटना है। और कुछ ऐसा भी पता नहीं है कि लाला वंश में नकद दाम देकर हाथी खरीदा जाता था या कहीं से कोई राजे-महराजे इनाम में दे दिया करते थे। खैर,

चाहे कुछ भी हो, उस गाँव में लाला वंश की ख्याति बड़े पुराने जमाने से चली आती है। हां यह अवश्य है कि उस ख्याति और गौरव का विशद वर्णन उसी खानदान के लोग करते हुए पाये जाते थे। गाँव के अधिकांश किसानों के बीच इस बात का कोई महत्व नहीं था। और इस महत्वपूर्ण बात के नितान्त साधारण हो जाने में भी एक खास बात थी। लाला वंश के लोग तब चाहे जो कुछ भी रहे हों, अब उनकी हालत वैसी नहीं थी। हल और बैल लेकर खेत की ओर आते-जाते उन्हें सभी कोई देखते थे। गाँव की औरतें उन्हें देखकर संकोच सहित घूँघट खींच कर ओट में खड़ी हो जातीं थीं। यही उनके गौरव का अंश था, बाकी वे साधारण परिवार की भाँति ही थे। उस परिवार की अब जितनी जमीन बची थी उसके लिये आपस में हर साल तकरार हो जाना एक मामूली बात थी। उस महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक वंश की उखड़ती हुई दोनों साँसों के समान अब दो ही भाई बच रहे थे। औरतें अलबत्ता ज्यादा थीं। और औरतों के अधिक होने के कारण आपस में झगड़े भी बहुत थे।

मनोज इसी वंश में पैदा हुआ था। लेकिन उसे अपने गाँव और अपने परिवार के विषय में विशेष कुछ मालूम नहीं था। उसने अपने मामा के यहाँ होश सँभाला। वे शहर में किसी वकील के यहाँ मुहर्रिर थे। अपने मुअक्किलों के सामने वे ऐसी फारसी मिश्रित क्लिष्ट भाषा में कानून की बातें समझाते थे जिसका दिहातियों की अक्ल में समाना बड़ा ही दुरुह था। वही मामा साहब दोनों शाम मनोज के कान गर्म किया करते थे और हर महीने स्कूल की फीस अदा करते थे।

एक साल के बरसात की घटना है। उस साल युक्तप्रान्त में महामारी का ऐसा प्रकोप फैला जिसकी कोई हद नहीं। क्या शहर, क्या गाँव? सभी बुरी तरह बरबाद होने लगे। मनोज के मामा के यहाँ भी यह रोग घुसा। जिस दिन वह अपने मामा और मामी को एक ही चिता पर लिटा कर रोता हुआ घर लौटा उसी दिन उसने सुना कि उसके माता-पिता, भाई-बहन, कोई भी इस संसार में नहीं हैं। सबको महामारी ने सहसा उदरसात् कर लिया था।

और मनोज इस संसार में अकेला बच गया।

लेकिन यह अकेला कहना वास्तविक हो सकता है, लौकिक नहीं। लौकिक दृष्टि से उसके एक सगे चचा जीवित थे। उन्होंने सारी खेती-बारी हथिया ली थी। इधर मनोज भी अठारह साल का हो चुका था। इन्ट्रेन्स के आस-पास किसी क्लास में पढ़ता था। समझ भी अच्छी हो गई थी। उसने जाकर अपने चचा से अपना हिस्सा माँगा। उसके चचा अपने सिर और मूँछों में खिजाब लगाते थे और मुस्करा कर बातें करते थे। उनके विषय में यह प्रसिद्ध था कि कुरान का जितना अच्छा ज्ञान इन्हें है उतना शायद ही किसी अच्छे मुसलमान मौलवी को भी नहीं होगा। उन्होंने मुस्कराते हुए मनोज को जवाब दिया—बेटा, तुम हिस्सा माँगने तो आ गये, मगर हमारा जो बारह सौ तुम पर आता है वह कौन अदा करेगा?

इसके बाद उन्होंने टिन के चोंगे में बन्द किये हुए कुछ कागजात बाहर निकाले। एक कागज से मालूम हुआ कि मनोज के पिता ने अपनी नाममात्र की सारी जायदाद को उन्हीं के हाथ बेच

दिया है। दूसरे कागज से पता लगा कि मनोज अब बारह सौ रुपये और उसका वाजिब सूद देने के लिये बाध्य है। और बाकी कागजात वैसे महत्व के नहीं थे; लेकिन फिर भी एक बात अवश्य प्रकट करते थे कि मनोज के पिता अपने भाई के अहसान और ऋण के बोझ से बिलकुल दबे हुए थे।

गाँव भर में इस बात की गर्म चर्चा थी। मुँह पर तो कोई कुछ भी नहीं कहता था; लेकिन गाँव के प्रत्येक आदमी ने मनोज को अकेले में इतना अवश्य कहा कि वे सारे कागज जाली हैं; तुम्हारे चचा में इतनी हिकमत है कि वे चाहे किसीका भी जाली दस्तखत बना सकते हैं। इसके अलावा उनकी खोटी नीयत, उनके कमीनेपन आदि की अनेकानेक बातें।

मनोज लड़का था। उसकी दुनिया उम्मीदों से भरी थी। उसके मन में अच्छी-अच्छी बातें थीं। उसे यह भी विश्वास था कि संसार में सत्य की जीत अवश्य होती है। इसके अलावा उसने देख लिया था कि गाँव के सभी बूढ़े और जवान एक-एक करके उसके पक्ष में हैं। समय पड़ने पर वे अवश्य काम देंगे। मनोज सभी तरह मुफलिस था। तन पर साबित कपड़े भी नहीं थे। बात को अदालत तक पहुँचा नहीं सकता था; लेकिन उसने पंचायत बटोरी और पंचों के आगे अपनी फरियाद की। उसे विश्वास था कि अगर उसके चचा पंचों का फैसला मान लेंगे तो वह अवश्य जीत जायगा। मगर पंचायत करने के बाद उसने पाया कि न तो पंच में परमेश्वर बसते हैं और न सदा सत्य की जीत ही होती है। सभी पंचों ने बारी-बारी से कागजों को देखा और कहा, दस्तखत तो मनोज के

पिता का-सा ही मालूम होता है। सिर्फ दो-चार ही ऐसे बच रहे थे जो इस विषय में मतभेद रखते थे। उनमें इकराम नाम का एक बूढ़ा था जिसकी आँखों की रोशनी मद्धिम पड़ गई थी। दूसरे सियाराम सिंह थे जिनके बारे में सबको मालूम था कि वे मनोज के चचा के परम शत्रु थे और सदा उनकी बुराई सोचते थे। अदालत में उन लोगों का कोई मुकदमा भी चल रहा था। इसी तरह आबिदआली और सुखराम पंडित थे। लेकिन ऐसे लोगों की गिनती ज्यादा नहीं थी। बाकी सभी लोगों ने कहा—ये अक्षर मनोज के पिता के-से ही हैं। कागजों में कुछ लोगों की गवाहियाँ भी अवश्य थीं; लेकिन महामारी के प्रकोप से कोई भी गवाह अब इस धराधाम में उपस्थित नहीं था।

पंचायत में एक हल्के-से विवाद के अलावा मनोज के चचा सभी तरह जीत गए। उन्होंने मुस्कराते हुए मनोज से कहा—बेटा, पंचायत करके तो देख चुके। अब इसमें भी कोई शुबहा बच रहा हो, तो अदालत का दरवाजा है! जी चाहे, वह भी करके देख लो!

मनोज सब कुछ आशा के विपरीत देख रहा था। चचा की बात सुनकर आग बबूला हो उठा। न जाने किसकी एक लाठी उसके सामने रखी थी। उसे मनोज ने उठाया और चिल्लाकर बोला—सब साले कमीने हैं!

उसके बाद ही एक निमिष में लोगों ने देखा कि मनोज के चचा का माथा फट गया है, रक्त की धार पंचायत की दरी पर गिर रही है और वे बेहोश होकर गिरे जा रहे हैं। सभा-स्थल संग्राम-भूमि हो गया। लोग मनोज को पकड़ने दौड़े; लेकिन तब तक वह अपने

चचा के कई गवाहों को काफी शिक्षा दे चुका था। आखिर तक मनोज पकड़ में नहीं आया। न जाने कहाँ का खून उसके सिर पर सवार हो गया था। जब उसने देखा कि बचने की कोई युक्ति नहीं है तो तुरत वहाँ से भाग चला। कोई उसके पीछे दौड़ा, कोई देखता ही रह गया। गाँववाले मन ही मन मनोज पर प्रसन्न हो रहे थे कि उसने पाजियों की अच्छी कुन्दी की।

उसी दिन आधी रात के समय सारे गाँव में एक प्रकार का उजियाला-सा छा गया, धुँए के मारे लोगों का दम घुटने लगा। 'आग लग गई!' 'कहाँ आग लगी है?' और सबने चकित होकर देखा कि मनोज के चचा के घर में आग लग गई है और वह सिर में पट्टी बाँधे आग बुझाते हुए दौड़ रहे हैं।

× × ×

उसके बाद से उस गाँव में किसीने मनोज को नहीं देखा।

× × ×

वही मनोज था।

—:o:—

२

उपरोक्त घटना के पाँच वर्ष के बाद की बात है।

उन दिनों मनोज उन्नाव की सड़कों पर घूमता हुआ नजर आया। अब वह नौजवान था। मूँछें निकल आई थीं, चाल में बेफिक्री और मस्तानापन। देखने में वह खूबसूरत था। उसकी आँखें छोटी और चंचल थीं। बायें हाथ में एक स्टोल का छोटा-सा बक्स था जिसमें उसकी सारी दूकान उपस्थित रहती थी। जगह-जगह भाँति-भाँति के काम करने के बाद अब उसने एक विचित्र व्यवसाय को अपनाया था। उसने भली भाँति परख कर देख लिया था कि कुछ काम करके या नौकरी करते हुए दुनिया में उन्नति करने की कोई गुंजाइश नहीं है। उसने देखा था कि दुनिया में केवल धनिकों की कद्र है। इसके अलावा उसने यह भी देखा था कि धनिकों की विद्या-बुद्धि में और उसमें कोई अन्तर नहीं है। फिर वह भी उन सुखों का अधिकारी क्यों नहीं हो सकता है जिनका उपभोग दूसरे लोग कर रहे हैं! लेकिन उसके लिये कहीं कोई रास्ता नहीं था। वह चारो ओर आँखें पसार कर देखता; लेकिन उसकी कुछ समझ में न आता कि किस बुनियाद पर दुनिया का यह सिलसिला चल रहा है। स्टेशन पर कुली का काम करते हुए या ऐसा ही कोई व्यवसाय करके जीवन को खींच खाँच कर किसी प्रकार उसे मृत्यु के समीप तक पहुँचा देना ही उसका उद्देश्य नहीं था। वह जगत् में कुछ होना चाहता

था। वह क्यों कुछ होना चाहता था या क्या होना चाहता था इस विषय का उसे कोई खास अन्दाज नहीं था। लेकिन फिर भी वह कुछ होना चाहता था, क्योंकि उसकी ऐसी ही प्रवृति थी, क्योंकि वह अपने को बहुतों से अच्छा समझता था। इसीलिये हार-दाँव देखकर उसने एक विचित्र व्यवसाय को अपनाया था। उसका वह सम्पूर्ण व्यवसाय स्टील के उस बक्स में बन्द रहता था। उसमें भाँति-भाँति की दवाइयाँ थीं। दाँत का मंजन, आँख का अंजन, धातु-पुष्टि की दवा, गठिया का तेल, आदि, सभी प्रकार की दवाइयाँ वह रखता था। इसमें उसे कोई विशेष पूँजी नहीं खर्च करनी पड़ती थी। ईंट को भली भाँति बुकनी बनाने के बाद उसमें जरा-सा इत्र छिड़क कर उसे टिन की डिबिया में बन्द करते ही वह दन्त-मंजन तैयार हो गया था। इसी तरह इसबगोल की भूसी, डारचीनी, कबाबचीनी, आदि, की बुकनी बनाकर उसमें कुछ परिमाण के साथ मैदा मिलाने के बाद वह धातुपुष्टि की ऐसी अच्छी दवा हो गई थी जिसके जोड़ की कामियाब दवा शायद ही इस जगत् में और कहीं मिल सके। गठिया के तेल की तो बात ही निराली थी। वह तेल तारपीन और एरंड के तेल के मिश्रण से तैयार किया गया था। और भी कई चीजें उसमें मिलाई गई थीं। इस तेल के विषय में मनोज का दावा था कि चाहे कैसा भी गठिया क्यों न हो, एक सप्ताह की मालिश के बाद बिल्कुल आराम हो जायगा। वह खुले आम यह भी घोषणा करता था कि इस तेल के व्यवहार से धनुषटंकार तक के रोगी भी अच्छे हो गये हैं। इन सारी चीजों को वह सड़क के किनारे मौके की जगह पर खड़ा होकर बेंचता था। उसके साथ कपड़े पर बना हुआ एक नर-कंकाल का

चित्र था। पहले उसे फैलाता, उसके बाद कुछ ताश के जादू दिखलाता, फिर एक लम्बा-चौड़ा आकर्षक लेक्चर देकर अपनी उन दवाइयों की बिक्री किया करता था। जनता भी ऐसी भोली-भाली थी कि जान-बूझकर उसके जाल में जा फँसती थी। मनोज की लच्छेदार बातों में पड़कर लोग खुशी-खुशी उन दवाइयों को खरीद कर घर ले जाते थे। शायद खरदीनेवालों का ऐसा खयाल हो कि उसकी बताई हुई हजारो तारीफों में से अगर पचास भी सच निकलीं तो भी वह काम की चीज होगी। और मनोज उन चीजों की अच्छी-खासी बिक्री करके कुछ पैसे पैदा कर लेता था। इन पैसों से वह काफी ठाट-बाट से रहता था। रेशमी कोट पहनता, रेशमी पगड़ी बाँधता, सोने के फ्रेम का चश्मा लगाता और अपने नये जूतों में रोजाना पालिश भी लगवाया करता था। देखने में वह खूब-सूरत था। मन में हौसलों और उमगों की कमी नहीं थी। आमदनी और खर्च का लेखा-जोखा न होने के कारण और जगह-जगह मन-चलों का संग हो जाने के कारण उसकी आदतें भी बहुत कुछ खराब-सी हो गई थीं। वह वेश्याओं के यहाँ गाना सुनने जाया करता था और रंगरेलियों में अपनी आमदनी का महत्वपूर्ण हिस्सा गँवा आता था।

उसदिन की बात है। झुटपुटा होने पर वह धर्मशाले में लौटा। आज उसने पन्द्रह रुपये की दवाइयाँ बेची थीं, जिस कारण वह बहुत ही प्रसन्न था। वह कोई गीत गुनगुना रहा था और अपनी कमाई के रुपयों और रेजगारी को गिन रहा था। मन ही मन वह इस कल्पना में व्यस्त था कि आज की रात किस कोठे पर बिताई जाय। इसी

समय दो देहाती नौजवान उसके कमरे में घुस आये । वह चौकन्ना होकर उस ओर आँखें घुमा ही रहा था कि उनमें से एक ने चिल्लाकर कहा—यही है, साला !

मनोज कुछ समझ नहीं सका कि आखिर बात क्या है । लेकिन उसके प्रश्न करने के पूर्व ही उसी आदमी ने फिर कहा—इसी ने दवा बेचने के बहाने मामा से पैसे झपट लिये हैं ।

दूसरे आदमी ने लपककर उसकी कलाई थामी और तीव्र स्वर में पूछा—तुम ऐसा काम क्यों करते हो ?

इस एकाएक हमले से मनोज हक्का-बक्का हो गया । मन ही मन वह बहुत ही डर गया ; लेकिन यह भी जानता था कि हिम्मत छोड़ने से कोई फायदा नहीं । हेकड़ी के साथ बोला—कैसा काम ?

"कैसा काम ?" कलाई पकड़नेवाले की आँखें क्रोध से चमक उठीं । बोला—चोट्टे, दवा-दवा चिल्लाकर ठग-विद्या फैलाते हो ? आज आँटे-दाल का भाव मालूम होता है । पहले तुम हमारे चचा से लिये हुए सवा रुपये वापस करो ।

मनोज की हिम्मत धीरे-धीरे लौट रही थी । वह जानता था कि धर्मशाले में रहनेवाले दूसरे-दूसरे यात्री अभी जमा हो जायेंगे । ये उजड्ड देहाती हैं । एक बार अच्छी तरह झाड़ देने से ही रोब में चले आवेंगे । उसने तीव्र अवज्ञा का भाव दिखलाकर कहा—तुम लोग क्या बदतमीजी कर रहे हो ? जरा होश में आकर बातें करो । जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो ?

कलाई पकड़नेवाले ने कलाई छोड़ दी और कहा—वह सब कुछ पीछे देखा जायगा, पहले तुम हमारे रुपये वापस करो ।

कैसा रुपया ?—मनोज ने अनजान बनकर प्रश्न किया ।

उन दोनों ने क्रोध, अवज्ञा और भर्त्सना के साथ जो बात कही उसका मतलब था कि हमलोगों के चचा ने तुम से गठिया और ताकत की दवाइयाँ खरीदी थीं लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ । इसके अलावा गाँव भर में जितने लोगों ने दवाइयाँ खरीदीं उनमें से किसी को भी लाभ नजर नहीं आया । अतएव अगर भला चाहते हो तो सीधे से वे पैसे निकालकर वापस कर दो, नहीं तो ठीक न होगा ।

मनोज ने रुखाई से कहा—क्यों ठीक न होगा ?

इस पर वे बेतरह कड़े पड़े । शोर सुनकर धर्मशाला के दूसरे-दूसरे लोग भी आ पहुँचे । काना-फूसी होने लगी । मनोज की बातों और उसकी दवा, किसी पर भी धर्मशाला में रहनेवाले यात्रियों का विश्वास नहीं था । थोड़ी-सी रगड़-झगड़ के बाद यही फैसला हुआ कि मनोज उनलोगों के साथ गाँव में जाकर उनके चचा की हालत देखे । अगर वह सचमुच अच्छा न हुआ हो. तो मनोज का फर्ज है कि वह गरीब किसान से लिया हुआ पैसा वापस कर दे ।

मनोज इस फैसले पर अनिच्छा पूर्वक राजी हो गया । हो क्या गया, उसे ऐसा करना पड़ा । झल्लाया हुआ वह अपने बक्स को लेकर बड़बड़ाता हुआ उन अक्खड़ किसान युवकों के साथ निकला । मनोज जो कुछ बड़-बड़ा रहा था उसका आशय था कि लोग दवाइयाँ तो खरीद लेते हैं और समझ जाते हैं कि केवल दवा फाँकने से ही रोग अच्छा हो जायगा । असल चीज तो है परहेज और अनुपान । परहेज और अनुपान के बिना तो हकीम लुकमान की

दवाइयाँ भी अपना असर नहीं दिखला सकतीं, उसकी दवाइयाँ तो सिर्फ जंगली जड़ी-बूटियों की बनी है।

इन्हीं बातों को वह बार-बार कहता गया, बड़बड़ाता गया, झल्लाता गया । यहाँ तक कि वे दोनों किसान ऊब गये, क्योंकि मनोज बीच-बीच में कहता था कि तुम लोगों ने मुझे मुफ्त में परीशान किया। ऐसा कहीं का कायदा नहीं है कि आज दवा खरीदी गई और जाकर पचास दिन बाद उसका दाम वापस माँगने आए। आदमी को खरीदने के पहले ही इतमीनान कर लेना चाहिये, खरे-खोटे की परख कर लेनी चाहिए। इन देहातियों को कभी अक्ल न आएगी।

वे दिहाती किसान युवक भी बुरी तरह झल्ला उठे। मनोज की जबान में लगाम नहीं थी । उसकी तबीयत में जो आता था वही बके जा रहा था । अन्त में ऊब कर उन लोगों में से एक ने कहा—कौन मरदूद कहता है कि हमारे मामा ने परहेज नहीं किया। जब से तुम्हारी दवा खरीदी गई है तब से पुराने चावल का भात और मूँग की दाल खाते हैं। रात को दूध के सिवा और कुछ नहीं पीते।

मनोज तो झगड़ा करके निकलना ही चाहता था। उसे न तो पाँच मील दूर गाँव में जाना ही मंजूर था और न दवाइयों की कीमत वापस करना ही । वह शुरू ही से इस ताक में था कि बुत्ता देकर या रार ठान कर इन कम्बख्तों से पिंड छुड़ा ले । उसकी बात सुनते ही कड़क कर बोला—अरे! परहेज करता तब तो कोई बात ही नहीं थी। तुम लोगों के खाने का तो ठिकान तो है ही नहीं परहेज और अनुपान कहाँ से करोगे! बड़े आये हैं बात बनाने!

यह सुनते ही एक ने मनोज का टेंटुआ पकड़ा और दूसरे ने एक

भरपूर लप्पड़ रसीद किया। मनोज इस प्रकार मारपीट के लिये प्रस्तुत नहीं था। मगर फँस चुका था। थप्पड़ पड़ते ही वह सामने के आदमी से चिमट गया। दोनों अपनी ताकत के मुताबिक एक दूसरे को पटक कर उसपर हावी होने की कोशिश करने लगे। इसी समय दूसरे किसान ने तान कर ऐसा डंडा मनोज के सिर पर मारा कि उसका सिर फूट गया। मनोज एक बार आर्तनाद कर उठा और दूसरे ही क्षण जैसे बाई की झोंक में उसने लपक कर डंडा पकड़ लिया। उस डंडे को लेने के लिये दोनों आपस में खींचातानी करने लगे। दोनों एक दूसरे के हाथ को ऐंठ रहे थे कि इतने में मनोज को अपने हाथ में कोई आवाज रट-रट की-सी मालूम हुई, वह भी जैसे स्वप्न में। और उसके बाद वह बेहोश होकर वहीं पर खून से लथ-पथ गिर पड़ा।

वे दोनों किसान भी ऐसी घटना के लिये तैयार नहीं थे। हालाँ कि वे गुस्से में भरे हुए लड़ने के लिये ही आये थे; मगर इतना बड़ा काण्ड कर देने को कभी प्रस्तुत नहीं थे। उन लोगों ने समझा कि मनोज मर गया। दोनो वहाँ से बदहवास होकर अपने घर की ओर उस अन्धेरे ही में दौड़ते हुए गायब हो गये।

जिस स्थान पर यह घटना हुई थी वह शहर के बाहर का एकान्त में था। सरकारी अफसरों के बँगले वहाँ से एक-सवा मील ही की दूरी पर थे। आदमियों का आवागमन भी नहीं था। मनोज वहीं पर बेहोश पड़ा रहा। चारो ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। ठंढी हवा बड़ी तेजी से बह रही थी।

—o—

३

मनोज को जब होश हुआ तो उसने देखा कि वह अस्पताल में है। उसका दाहिना हाथ टूट गया था इसलिये उसे काट डाला गया था। सिर में गहरी चोट थी। भाग्य था कि वह बच गया।

और इससे भी बड़ा भाग्य था कि उसके पास कुछ रुपये थे। यदि ये रुपये न होते तो उसके मरने में कोई कसर नहीं थी। वह नर्स, जो टेम्परेचर लेने आती थी, सदा झल्लाई हुई आती थी। इस तरह हेच निगाह से गरीब रोगियों की ओर देखती, इस तरह चिड़चिड़ाकर बातें करती कि आदमी उसकी उपस्थिति की अपेक्षा उससे दूर ही रहना अच्छा समझता था। वह घनी मूँछोंवाला कम्पाउण्डर, जो सदा खूब ही पावरवाला चश्मा लगाये रहता था, जब ड्रेसिंग करने आता तो मनोज से ज़रा मुलायमित से बातें करता था। इस मुलायमियत के तात्पर्य को वह डोम—जो ड्रेसिंग करने के काम में मदद देने को मौजूद रहता था—बड़े अच्छे ढंग पर व्यक्त करता था। वह कहता था कि कम्पाउण्डर साहब की निगाह होनी चाहिये, फिर तो यहाँ घर से भी ज्यादा आराम मिल सकता है। हमारे कम्पाउण्डर साहब बड़े दयालु हैं। रोगियों को देखकर इनका कलेजा पानी की तरह पिघल जाता है।

यह बात सुन-सुनकर कम्पाउण्डर साहब मूँछों के नीचे-नीचे मुस्कराते थे। उनकी आँखें गर्व से चमकने लगतीं।

डोम, जिसका नाम शिवरतन था, कम्पाउण्डर से पूछता—क्यों कम्पाउण्डर साहब, सिगरेट है न ?

कम्पाउण्डर के अस्वीकृति सूचक सिर हिलाने पर शिवरतन मनोज के सामने हथेली पसार देता—लाइये तो हुजूर, पैसा ! कम्पाउण्डर साहब के लिये सिगरेट खरीद लावें।

उसके बाद कम्पाउण्डर साहब ने खुद ही मनोज से सिगरेट माँगना शुरू किया। एक दिन उधार कह कर पाँच रुपये लिये; अक्सर किसी-किसी दिन कह बैठते थे—अजी तुम्हारा रोग अच्छा कैसे होगा, कुछ नाश्ता वाश्ता तो मँगवाते ही नहीं हो।

उस नर्स को प्रसन्न करने के लिये मनोज ने एक युक्ति निकाली। उसे मेम साहब कहना शुरू किया। इस मेम साहब शब्द को बढ़ा कर उसने हुजूर मेम साहब कर दिया; लेकिन उनका जो स्वभाव था वही था। मनोज मन ही मन सोचता कैसे लोग यह कह देते हैं कि स्त्री कोमलता का अवतार होती है। यह नर्स तो बिल्कुल राक्षसी है ! वह उसका चेहरा ही देखकर भिन्ना उठता; लेकिन कोई चारा नहीं था।

वह खुलकर रिश्वत तो माँगती नहीं थी। उसने लेने की कला सीखी ही नहीं थी और जब तक आदमी कुछ उसे देता नहीं था तब तक वह उसपर झल्लाती रहती, किचकिचाती रहती, डायन की तरह उसे देखा करती थी। मनोज जैसे ही इस वयस्का नर्स को देखता वैसे ही एक बार अपनी आँखें बन्द कर लेता। नर्स चलकर उसके पास आती और मुँह में जबरदस्ती थर्मामीटर घुसेड़ती हुई बोलती—मुँह खोलो !

एक दिन मनोज ने उसे एक वेस्ट ऐन्ड वाच की कौपसेक घड़ी दी और कहा—मेम साहब, आप इस घड़ी को रखिये। मेरा तो हाथ ही टूट गया है इसलिये घड़ी रही न रही, बराबर है।

मेम साहब ने फौरन ही वह घड़ी ले ली। उन्हें इस बात की जाँच की भी कोई परवाह नहीं थी कि मनोज का दाहिना हाथ टूटा है या बायाँ। यदि दाहिना हाथ टूटा है तो बायें हाथ में तो घड़ी लगाई ही जाती है।

उस घड़ी को लेकर नर्स ने पूछा—यह कितने की है?

मनोज ने उसका दाम बतलाया।

नर्स उलट-पुलट कर घड़ी को ललचाई निगाहों से देखती हुई बोली—घड़ी तो बड़ी सुन्दर है। मेरी एक मौसेरी बहन है। वह ऐसी ही घड़ी लगाती है; लेकिन वह जनानी घड़ी है, इससे बहुत छोटे साइज की। तुमने कहाँ खरीदी थी?

कन्नौज में।

नर्स ने फिर और कुछ नहीं पूछा। वहाँ से चली गई।

दूसरे दिन से जब वह आती तो वैसी झल्लाई हुई न रहती। मनोज के साथ सहूलियत से पेश आती। कभी-कभी जब मनोज बहुत खिन्न नजर आता, तो वह पूछती—तुम क्या सोचते हो; घर?

घर?—मनोज इस प्रश्न को आप ही आप दुहराता और धीमे से मुस्करा देता।

डाक्टर वगैरह कोई उस पर ध्यान नहीं देते थे। वह बिल्कुल उपेक्षित वातावरण में रहता। यदि शक्ति होती तो वह उस चारपाई

से उठकर अस्पताल से बाहर निकल जाता। वहाँ उसे जरा भी अच्छा नहीं लगता था। उसकी बगलवाली चारपाई पर जो रोगी था वह एक किसान था। उसका तमाम शरीर भयंकर घाव से भरा हुआ था, बहुमूत्र की भी शिकायत थी। उसके शरीर से विकट दुर्गन्ध आती थी। बचने का भी उसका कोई भरोसा नहीं था। मनोज कभी-कभी उसीसे बातचीत करके जी बहलाने की कोशिश करता था। यद्यपि उसके बचने की कोई आशा नहीं थी; लेकिन वह बातचीत में मनोज से इसी बात का खेद प्रकट किया करता था कि इस साल गेहूँ की खेती कैसी हुई है, इसका कोई पता नहीं। वह तो घर में रहेगा नहीं और उसका भतीजा बहुत सीधा आदमी है, इसलिये मज़दूरों की बन आएगी। वे मनमाना अपने घर में गेहूँ भर लेंगे। कभी-कभी उस किसान का भतीजा और उसकी स्त्री मुलाकात के लिये आते थे। उस समय वह काम-काज की सारी बातें दुबारा-तिबारा समझाता और बार-बार इस बात की हिदायत कर देता कि गोलमाल न होने पावे। जब वे लोग चले जाते तो वह मनोज से इस बात का अविश्वास भी प्रकट करता कि वे उसके काम के दायित्व को भला क्या समझें! मनोज को उसकी बातचीत से कोई तृप्ति नहीं होती थी। खास करके शरीर से उठनेवाली बदबू से उसे कै होने-होने का-सा हो आता था, हमेशा मतली आती थी। मगर करे तो क्या. लाचार होकर उसे वहीं रहना पड़ता था। वह स्थान नर्क से कम दुखद नहीं था।

पन्द्रह-बीस दिन के बाद वह रोगी एक दिन रात के समय बुरी तरह चिल्लाने लगा। मनोज की नींद टूट गई। वह जागता

रहा और उस गरीब किसान के आर्तनाद को सुनता रहा। वह समझ गया कि यह आदमी मृत्यु के समीप है। उसे रोमांच हो आया और वह बेहद भयभीत हो गया। वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि इस किसान की तीमारदारी पर किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया। उसका कारण था कि उसके पास पैसे नहीं थे। न वह नर्स को खुश कर सकता था और न कम्पाउण्डर और डोम को। डाक्टर को प्रसन्न करना तो बड़े दूर की बात थी! वे तो कभी उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे। न अच्छी तरह उसका कभी घाव ही धोया जाता था और न अच्छी तरह कभी उसे दवा ही दी जाती थी। अगर वह कुछ पूछता तो उसका जवाब उसे झिड़की में मिलता। जो आदमी खाना लेकर आता था वह भी उसकी परवा नहीं करता था। जैसा-तैसा देकर चला जाता था। हालाँ कि उसके सामने ही मनोज को वह अच्छा भोजन देता, दूध भी देता; मगर उसने कभी उस किसान की परवा नहीं की। इसका कारण साफ़ था। मनोज ने पूजा चढ़ाई थी और उस किसान के पास तंगदस्ती के सिवा और कुछ नहीं था।

मगर उससे भी ज्यादा दुख मनोज को तब हुआ जब वह किसान इस मरणान्तक पीड़ा में भी जीता रहा, छटपटाता रहा, बेचैन रहा, कराहता रहा; लेकिन फिर भी किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। अस्पताल के सभी लोग उसे देखते थे। वह मृत्यु के पंजे में छटपटाता हुआ दारुण चीत्कार कर रहा था; लेकिन लोग देखकर ही चुप हो जाते थे। दूसरे दिन से उसका घाव धोना भी बन्द कर दिया गया। डाक्टर ने आकर एक दूसरी दवा की व्यवस्था कर दी; लेकिन

समय पर उसे पिलानेवाला कोई नहीं था। मनोज में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह उठ सके। अस्पताल के कोई भी कर्मचारी उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहते थे। मानों उनके लिये इस प्रकार की मृत्यु, ऐसी दर्दनाक पीड़ा, ऐसी बहोशी और ऐसी चिल्लाहट बिलकुल रोजमर्रा की बात हो। नर्स तो उस कमरे में आकर बिलकुल ठहरना भी नहीं चाहती थी। जब तक उस कमरे में रहती नाक पर रुमाल दिये रहती। उसके सड़े हुए घाव की दुर्गन्धि से मनोज का सिर चक्कर खाता था। कई बार उसने पड़े-पड़े कै भी की। इस तरह वह किसान चार दिन और जीवित रहा और आर्त स्वर में कराहता रहा। चौथे दिन रात को उसने चिल्लाकर पानी माँगा, आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखा और चुप हो गया। उसकी दृष्टि मनोज के चेहरे पर स्थिर हो गई। वह मनोज की ओर एकटक देखने लगा। उसकी यह दृष्टि बड़ी भयावनी दृष्टि थी। मनोज उसकी इस दृष्टि से भयभीत हो उठा। उसकी अन्तरात्मा काँप उठी। डरते-डरते उसने उससे पूछा—तुम क्या चाहते हो? तुम्हें कैसा मालूम होता है? लेकिन किसान चुप था! थोड़ी देर तक हल्की-सी एक घरघराहट की आवाज उसके गले से निकलती रही लेकिन फिर तुरत ही शान्त हो गई। उसकी आँखें भयानक रूप से उसे देख रही थीं। उसके चेहरे पर एक भाव था—भयानक, दर्दनाक। जैसे वह कुछ बोलना चाहता हो, जैसे अब बोलेगा। लेकिन वह रात भर कुछ नहीं बोला। उसी तरह एकटक, तेज दृष्टि से भयानक भाव से उसकी ओर सारी रात देखता रहा। मनोज सारी रात उसकी आँखों से आँखें मिलाये हुए अपने बिस्तर पर दबका रहा। उसे बहुत डर

मालूम हो रहा था। खासकर उसकी दृष्टि और उसके चेहरे का वह भयानक भाव तो उसकी जान ही ले रहा था। मनोज इतना डर गया था कि उसकी आँखों पर से अपनी आँख हटा नहीं सकता था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि जैसे आँख हटते ही यह आदमी एक बारगी मुझे दबोच कर मेरी जान ले लेगा।

आखिर सवेरा हुआ। उस दिन तड़के ही दस्तूर के खिलाफ कम्पाउण्डर और वह डोम उस कमरे में आ पहुँचे। मनोज घबराया-सा बोला—कम्पाउण्डर साहब,...हुजूर,...देखिये तो यह इस तरह क्यों देख रहा है! मुझे बड़ा डर मालूम होता है। यह रात भर मेरी ओर इसी तरह देखता रहा है।

कम्पाउण्डर ने उसकी ओर एक निगाह डाली और मुस्करा-कर सहज भाव से बोला—तुम तो फिजूल डरते हो। इस तरह यह तुम्हें नहीं, खुदा को देख रहा है।

आश्चर्य और दुख की चोट से सहसा आहत होकर मनोज बोल उठा—हैं! शिवरतन डोम कम्पाउंडर की बात सुनकर खिल-खिला उठा। हँसते हुए मनोज की ओर देखकर बोला—यह मर गया जी! इसका कोई आदमी आया भी नहीं। चलो तुम्हारा झंझट तो दूर हुआ। तीन-चार दिन से बहुत चिल्ला रहा था।

मनोज की आँखों में आँसू आ गये। वह एक दर्दभरी आह खींचकर बोला—बेचारे को बहुत कष्ट था।

मनोज के हृदय में इस तरह रुलाई घुमड़ रही थी मानो उसका कोई अपना आदमी मर गया हो। वह अपने आँसुओं को पोंछ रहा था।

कम्पाउडर ने शिवरतन से कहा—चलो यह भीड़ भी खत्म हुई। अब इसे यहाँ से उठवाने का वन्दोवस्त करो।

मनोज उत्सुक होकर बोला—इसे उठावेगा कौन ? इसका कोई आदमी आया है ?

"कोई आदमी नहीं आया, तो क्या हर्ज है ?" कम्पाउंडर ने कहा—डोम लोग उठाकर ले जाएँगे।

'डोम !'—मनोज के मुँह से आप ही आप निकाला।

'डोम नहीं तो और क्या ?' कम्पाउंडर कुछ-कुछ उसके दिल का दर्द महसूस कर रहा था। बोला—ये साले डोम भी बड़े पाजी होते हैं। उन्हें हिन्दू लाशों को जलाने के लिये लकड़ी का पैसा मिलता है; लेकिन वे जलावेंगे क्या ? सारे पैसों की शराब पी जाते हैं और लाश को श्मशान में कहीं गाड़ देते हैं। इससे तो मुसलमान ही अच्छे। वे कभी अपनी लाशों को डोम के हाथों जाने नहीं देते। खबर मिली कि अस्पताल में मुसलमान लोग इकट्ठे हो गए। मैं यहाँ बीस साल से कम्पाउडरी कर रहा हूँ; लेकिन आज तक कभी नहीं देखा कि मुसलमानों का कोई मुर्दा डोम के हाथों में गया हो।

मनोज सिसक सिसककर रोने लगा। उसकी चादर का छोर आँसुओं से भींग उठा। वह यह स्पष्ट अनुभव कर रहा था कि उसकी गति भी किसी दिन ऐसी ही होनेवाली है। दुनिया में उसका है कौन ?

लाश कमरे से निकाल कर बाहर दरवाजे पर सुला दी गई थी। अस्पताल के दिये हुए सारे कपड़े खोलकर निकाल डाले गये थे।

अब उसकी लाश उसी मैली और धब्बों से परिपूर्ण लाल चादर से ढंकी हुई थी, जिसे ओढ़कर वह किसी दिन अस्पताल में लाया गया था। इसी समय एक ठेलागाड़ी को ठेलते हुए दो आदमी वहां आये। मनोज ने समझ लिया कि वे डोम लोग हैं। वे लोग न जाने किस आदमी के सम्बन्ध में बात करते हुए एक दूसरे के प्रति घोर मत-भेद प्रकट कर रहे थे। उनके वाद-विवाद का विषय था कि अमुक डोम को म्युनिसिपेलिटी में नौकरी किसकी मदद से लगी; उस वकील की मदद से या उस डिपटी की मेहरबानी से ? उनकी बातचीत का कोई निबटारा नहीं हुआ था, इस कारण वे वहीं बारामदे में बैठ गये और तम्बाकू में चूना लगाकर हथेली पर मलने लगे। सुरती खाने के बाद दोनों ने पचापच थूँका और लाश को उठाने के लिये तैयार हो गये। एक आदमी ने पैरों को पकड़ा, दूसरे ने सिर की ओर, और जिस तरह कोई मामूली सी लकड़ी का कुन्दा उठाया जाता है उसी तरह उस लाश को उठाकर ठेलागाड़ी पर ले चले। मनोज को ऐसा हो आया मानों इस तरह की बेरहमी से उस गरीब का घाव दुख जायगा और वह आकुल होकर चिल्ला उठेगा। लेकिन यह सब उसकी भ्रान्ति थी, क्योंकि उन डोमों ने उस ठेलागाड़ी पर रस्सी से बड़ी मजबूती के साथ उस लाश को बाँधा और ठेलते और गप्पें करते हुए ले चले।

—:o:—

४

मनोज से एक बार फिर कम्पाउडर ने कुछ रुपये उधार माँगे; लेकिन उसका दीवाला खिसक रहा था। उसने बहाना बना दिया कि अभी तो सिर्फ दो ही रुपये हैं, इसीसे किसी तरह काम चलाइये। वह जानता था कि इतने ही में सारी दुनिया समाप्त नहीं हुई। अभी और भी पत्रं-पुष्पं चढ़ाना बाकी है। मगर उस दिन के बाद ड्रेसिंग करते समय न जाने किस तरह मनोज के सर का घाव दुख जाया करता था। कम्पाउंडर उसकी ओर पहले की भाँति मूँछों के नीचे मुस्कराता हुआ नहीं देखता था। हाँ, नर्स के व्यवहार में कोई रद्दोबदल नहीं हुआ था। वह उसी भाँति आती, टेम्परेचर लेती और योंही कुछ बातचीत करके चली जाती थी। उस समय तक उसकी बगलवाली चारपाई पर तीन रोगी बदल चुके थे। उस किसान के बाद एक धनी मारवाड़ी आया था जिसका पेट फूल गया था। औपरेशन होने के बाद वह तीन-चार दिन रहकर घर चला गया और डाक्टरों को निमंत्रण देता गया कि आप लोग वहीं कष्ट किया करें। उसके पास सभी बड़े-छोटे डाक्टर, कम्पाउंडर नर्स, आदि, जितने अस्पताल के कर्मचारी थे सब जुटे रहते थे। उस मारवाड़ी की परीशानी से वहाँ का प्रत्येक कर्मचारी इतना परीशान होता था मानों उसकी जगह उन्हीं का पेट फूल गया हो। वाह री माया! मनोज सोचा करता कि एक वह बेचारा किसान था और

एक वह महोदय हैं। सभी गुलाम की भाँति इनके सामने हाजिरी बजाते हैं। एक मामूली भी बात हुई कि सारा का सारा अस्पताल उसके पीछे परीशान हो उठा। मनोज को उस मारवाड़ी से ईर्ष्यावश घृणा हो गई थी और वह उससे मेल बढ़ाना नहीं चाहता था। उस मारवाड़ी ने भी कभी मनोज की ओर अपेक्षा की निगाह नहीं डाली। जब देखा तब हेच नजर ही से देखा। सिर्फ एक दिन उसने मनोज से पूछा था—तुम कहाँ का आदमी है ?

मनोज ने तेज आँखों से उसकी ओर देखते हुए जवाब दिया था—इससे आपका मतलब ?

और मारवाड़ी चुप हो गया। उसके बाद फिर कभी कोई बातचीत नहीं हुई और उसके बाद तो वह चला ही गया।

उस मारवाड़ी के बाद जो रोगी उसकी बगलवाली चारपाई पर आया वह कोई सरकारी कर्मचारी था। स्टोव से उसका पैर जल गया था। वह चुपचाप लेटा-लेटा किताब पढ़ता रहता था, किसीसे कोई बात नहीं करता था। उसके साथ भी डाक्टर-कम्पाउंडर, आदि, ...लियत से पेश आते थे। मनोज इतना मूढ़ नहीं था कि वह इस... का कारण न समझ सके। वह जानता था कि यह आदमी सरकारी कर्मचारी है। इन लोगों से वास्ता पड़ने की सम्भावना बराबर बनी रहती है। इसी कारण इतनी खातिरदारी है कि इनसे न जाने कब क्या काम निकल जाय। उस आदमी ने भी कभी मनोज से बातें करने की चेष्टा नहीं की। वह एक शौकीन आदमी था। उसका भोजन घर से बना कर उसका नौकर लाता था। सबेरे की चाय तक घर ही से आती थी। वह अपने को एक महत्व-

पूर्ण व्यक्ति समझता था, क्योंकि बात करते समय अपने सम्बन्ध की छोटी-से-छोटी बात को भी वह बहुत तूल देता था। अपने रोग का इतना विशद वर्णन करता था कि सुननेवाले के मन में यही धारणा उत्पन्न होती थी कि जैसे ये स्वयं महत्वपूर्ण हैं वैसे ही इनके पैर का जल जाना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

एक दिन सवेरे आकर कम्पाउन्डर ने उस आदमी को सूचना दी कि अच्छा होता यदि आप इस छोटे से कमरे को छोड़कर एक दूसरे बड़े और हवादार कमरे में चले जाते। कम्पाउंडर ने उससे यह भी कहा कि आज से इस कमरे की पुताई होनेवाली है इससे आपको और भी तकलीफ होगी। वे राजी हो गये। उन्होंने कहा—मुझे खुद यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ से मुझे चाहे जहाँ ले जाइये, मैं प्रसन्न ही होऊँगा।

थोड़ी देर बाद ही वे वहाँ से चले गये, मनोज की चारपाई खिसका कर एक कोने में कर दी गई और कमरे की पुताई शुरू हो गई। दिन भर कमरे की पुताई होती रही और बार-बार डाक्टर, कम्पाउन्डर, आदि, आकर मजदूरों को ताकीद कर दिया करते थे। मनोज को इस बात से आश्चर्य होता था कि आखिर अस्पताल से इन्हें इतना प्रेम कैसे हो गया। उन दिनों मनोज पर भी काफी ध्यान दिया जा रहा था। उसे किसी भी चीज की आवश्यकता होती तो बिना माँगे ही वह चीज पहुँच जाती। कम्पाउन्डर भी अब उसकी ओर मूँछों के नीचे मुस्कराता हुआ देखता था। उसके कण्ठ स्वर में केवल स्नेह और सम्मान ही नहीं बल्कि मनोज के प्रति खुशामद का भाव भी प्रत्यक्ष प्रलक्षित होता था। डाक्टर

नी इधर दो-तीन दिन से नियमित रूप से आते थे और बड़े ह स्नेह और सद्भाव के साथ उससे बातें करते थे। खाना भी ठीक समय पर पहुँचना और यह भी आश्चर्य की बात थी कि भोजन की सारी चीजें बड़ी अच्छी रहतीं। चावल में कंकड़ नहीं मिलते थे, रोटी में घी की मात्रा विशेष रूप से रहती थी, दूध का परिमाण बढ़ा दिया गया था। दूध के साथ आवश्यकतानुसार चीनी भी मिली होती थी। मनोज को अचम्भा होता था कि एकाएक यहाँ की सारी स्थिति, यहाँ के आदमियों का स्वभाव, सब कुछ, कैसे बदल गया ? जैसे जादू की लकड़ी फिरा देने से क्या से क्या हो जाता है, ठीक उसी तरह अस्पताल का चोला ही दूसरा हो गया था। उस सरकारी कर्मचारी की चारपाई पर एक टायफायड का रोगी आ पहुँचा था। वह दिन भर ज्वर में डूबा रहता और अपनी आँखें भी नहीं खोलता था। उसकी औरत देहाती थी—मैली और पीली साड़ी उसके शरीर पर थी और उसकी नाक में एक बहुत ही बड़ा पीतल का नथ था। वह अपने पति के सिरहाने बैठी हुई आँसू बहाती रहती थी। और कोई वक्त होता तो उस देहाती औरत को अपमान के साथ निकलना पड़ता। साथ ही, उसके पति की भी वैसी ही तीमारदारी होती जैसी कि और लोगों की हुआ करती थी; लेकिन अबकी का वायु-मण्डल ही दूसरा हो गया था। कम्पाउंडर साहब बार-बार उस औरत की खुशामद करते थे कि बहनजी, आप क्यों कष्ट करती हैं. आपके स्वामी को हमलोग जी जान से देख रहे हैं। उन्हें कोई भी कष्ट नहीं होगा। आप घर जाइये और अपना काम देखिये।

स्नेह के धागे में बँधी हुई वह औरत वहाँ से टलना नहीं

चाहती थी ; लेकिन कम्पाउरडर के विनय पर वह पिघल गई। डाक्टर के अनुरोध को टालना भी कठिन था, खास कर जब वह अनुरोध अत्यन्त स्नेहपूर्ण और अपनेपन के भाव से किया गया हो। ओह, डाक्टर में आजकल कितनी बड़ी तबदीली हो गई थी। मनोज की ओर वह हँसता हुआ देखता और कहता—आप तो बहुत दिन रह गए जनाब ! घर जाइयेगा तो भूल न जाइयेगा। कहिए कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?

मनोज पानी-पानी होकर जवाब देता—जी नहीं, तकलीफ़ काहे क ? मुझे यहाँ बहुत आराम है ।

डाक्टर कहता—जरा आप भी इन देवीजी को समझा दीजिये कि ये फ़िजूल ही रोगी के नजदीक बैठी न रहें। आखिर हमलोग किस काम के लिये हैं ? रोगियों को देखने के लिये ही न ! अगर इन्हें आना ही हो तो मुलकात के वक्त आया करें ।

सबके समझाने-बुझाने से वह औरत चली गई और दूसरे दिन मनोज को इस सारे परिवर्तन का रहस्य मालूम हुआ। असल बात थी कि कोई बहुत बड़े सरकारी अफसर अस्पताल देखने आने वाले थे। सारी तैयारियाँ इसीलिये थीं, इसीलिये सब का स्वभाव निषाद से उतर कर षड्ज पर पहुँच गया था। एक दिन सबेरे, जिस समय डाक्टर आते थे उसी समय वे सरकारी अफसर डाक्टरों तथा अन्य कर्मचारियों के साथ मनोज के कमरे में पहुँचे। आज डाक्टर की पोशाक बिल्कुल दुरुस्त थी, हजामत भी तुरत की बनी हुई थी। देखने में विनय और कर्तव्यपरायणता के साक्षात् अवतार मालूम होते थे । मनोज की चारपाई के पास पहुँचकर

साहब ने डाक्टर साहब से अंगरेजी में कुछ पूछा, जिसका जवाब बड़े विस्तार के साथ डाक्टर साहब ने अंगरेजी में ही दिया। उसके बाद साहब ने मुस्कुराकर मनोज से पूछा—कैसा है; अच्छा है न?

मनोज सिर हिलाकर बोला—हाँ हुजूर, अच्छा हूँ।

कोई तकलीफ तो नहीं?

मनोज अबकी नकारात्मक रूप में सिर हिलाकर बोला—जी नहीं, कोई तकलीफ नहीं। यहाँ बहुत आराम है।

भला तकलीफ बतलाकर कौन अपने गले में फाँसी की रस्सी लपेटेगा? मनोज के इस उत्तर से डाक्टर को भी खासा सन्तोष हुआ और उन्होंने प्रसन्नता भरी आँखों से मनोज की ओर देखा। साहब ने कहा—अब थोड़ा दिन में तुम अच्छा हो जायगा। तब तुम अपना घर जायगा। तुमको छुट्टी मिल जायगी। हाँ।

मनोज ने स्वीकारात्मक ढंग से अपना सिर हिलाया।

साहब मनोज की चारपाई के निकट से चलकर उस देहाती की चारपाई के निकट पहुँचा और पूछा, कैसा है?

लेकिन वह आदमी बुखार में डूबा हुआ था। उसने आँखें खोलीं, साहब को अपने सिरहाने खड़ा देखा। उसके चेहरे पर विस्मय का एक भाव आया भी; लेकिन कोई जवाब नहीं दिया। इस आदमी में बड़ी विचित्रता थी कि इतना भीषण ज्वर होते हुए भी वह तनिक भी कराहता नहीं था और चुपचाप अपनी आँख बन्द किए बिस्तर पर लेटा रहता था। कोई जवाब न पाकर साहब ने डाक्टर से अंगरेजी में कुछ पूछा, जिसका उन्होंने जवाब दिया।

उसके बाद साहब ने उसकी ओर देखकर कहा—घबराओ मत, अच्छा हो जाओगे। कोई हर्ज नहीं।

और सबके सब उस कमरे से बाहर हो गये।

उस दिन दिन भर अस्पताल की पड़ताल होती रही। साहब ने रोगियों को देखा, उन्हें क्या भोजन मिलता है यह भी देखा। रोगियों को क्या-क्या सुविधायें मिलती हैं इसका भलीभाँति निरीक्षण करने के बाद साहब करीब चार बजे तक कागज-पत्रों को उलटते रहे। जब साँझ होने को आई तब वे वहाँ से गये।

साहब के जाने की देर थी, लेकिन वहाँ का सिलसिला बदलने में कोई देर न थी। दूसरे ही दिन से रवैया बदल गया। परम विनयी और कर्तव्यपरायण अस्पताल के कर्मचारियों के दर्शन ही दुर्लभ हो गये। कहाँ तो पाँच बजे सवेरे से ही कर्मचारियों का आवागमन आरम्भ हो जाता था और कहाँ दूसरे दिन नौ बजे दिन तक किसी का पता भी नहीं लगा। मनोज की बगलवाली चारपाई पर के रोगी को दस्त कराने के लिये रोज मेहतर आया करता था; लेकिन आज उसका भी कहीं पता नहीं था। उस आदमी ने कई बार चिल्लाकर कहा—मुझे पाखाना लगा है।

मनोज ने कहा—मेहतर का तो कहीं पता नहीं। बेड पेन भी कल रात से ही गायब है। अगर चलो, तो मैं तुम्हें पाखाने में पकड़ कर ले चलता हूँ।

इसमें उस आदमी ने अपना अपमान समझा या मनोज के कष्ट का खयाल किया यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता; लेकिन उसने मनोज के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। शायद, वह सोचता

हो कि मेहतर को अपनी भूल मालूम कराके डाँट देना ज्यादा अच्छा है बनिस्वत इसके कि खुद भी तकलीफ उठावें और अपने पड़ोस के रोगी को भी तकलीफ दें। आखिर ये इतने-इतने कर्मचारी हैं किस लिये ?

मनोज उन दिनों चल-फिर सकता था। जब बैठे-बैठे तबीयत ऊब जाती तो इधर-उधर चक्कर मार आता। दूसरे-दूसरे वार्डों के रोगियों से भी उसकी जान-पहचान हो गई थी और बैठकर उनसे बातचीत किया करता था। आज उसने देखा कि सभी रोगी कर्मचारियों की लापरवाही से चिढ़े हुए हैं, बैठे-बैठे झल्ला रहे हैं या आपस में तर्क-वितर्क कर रहे हैं। हालाँ कि वे अच्छी तरह जानते थे कि उनकी कटूक्तियों को सुननेवाला यहाँ कोई नहीं है और उनकी आलोचनाओं का कोई असर होनेवाला भी नहीं है। यदि कोई असर हो भी तो उसका नतीजा रोगियों के लिये खराब के सिवा कोई अच्छा नहीं निकल सकता। मनोज उन लोगों की बातचीत के अन्दर हाँ में हाँ मिला देता था, अपनी ओर से कुछ जोड़ता नहीं था। वह सोचता था कि कहीं कुछ कह बैठे और बात कर्मचारियों के कानों में पड़ गई तो उसका फल बहुत ही बुरा होगा। अब बहुत दिन बीत गये, थोड़े ही दिन बाकी हैं। उन लोगों के साथ बातचीत करके जब वह अपने वार्ड के कमरे में पहुँचा तो देखा कि तमाम कमरे में दुर्गन्ध भरी हुई है। वहाँ नाक देने की भी तबीयत नहीं होती थी। उस देहाती को बिस्तर पर ही पाखाना हो गया था। शरीर में शक्ति थी नहीं जो उठ-बैठ सके। सारा बिछावन गन्दा हो गया था। बेचैनी के साथ इधर-उधर करवटें बदलने के कारण

शरीर में भी जहाँ-तहां मल लगा था। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। मनोज ने देखा, वहीं पर उसका भोजन भी रखा है। मक्खियाँ यहाँ से उड़कर वहाँ जातीं, वहाँ से उड़कर यहाँ आतीं। बदबू के मारे नाक फट रही थी। उसने नाक पर कपड़ा देकर पूछा—अभी तक मेहतर नहीं आया ?

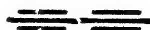
रोगी कराह कर बोला—क्या बतलावें भाई, मैं इसी तरह चार घंटे से पड़ा हूँ। तुम भी न जाने कहाँ चले गये।

मनोज मेहतर के प्रति गालियों की वर्षा करता हुआ वहाँ से निकला। उसे मतली आ रही थी और वह वहीं बैठकर कै करना चाहता था; लेकिन उससे भी पूर्व मेहतर को ढूँढ़ निकालना जरूरी था। बिचारा चार घंटे से उसी मैले पर पड़ा सो रहा है। नरक में भी इतनी यातना शायद ही होती होगी। कल ही सब कर्तव्य-परायणता के पुतले बन रहे थे, सब को अपनी-अपनी ड्यूटी का खयाल था; लेकिन साहब के पीठ घुमाते ही इन्होंने भी अपनी आँखें घुमा लीं। तबीयत हुई कि जाकर डाक्टर से कहें; लेकिन वहाँ झिड़की और झल्लाहट के अतिरिक्त किसी उपचार की आशा नहीं थी। उस समय तक एक बज चुका था। डाक्टर साहब अपने क्वार्टर में आराम कर रहे होंगे। कम्पाउन्डर लोग भी चले गये थे, मेहतर का कहीं पता नहीं था। इधर-उधर दरियाफ़्त करने के बाद पता लगा कि आज सबेरे ही जो वह नर्स के यहाँ से कुछ सामान लेकर उसे कहीं पहुँचाने गया था, सो अभी तक लौटकर वापस नहीं आया है। मनोज ने दूसरे मेहतरों से अनुरोध किया कि चलकर उस कमरे को साफ कर दें; लेकिन मेहतरों ने साफ जवाब दिया कि

वहाँ हमारी ड्यूटी नहीं है, जिसकी वहाँ ड्यूटी है वही उसका जवाबदेह होगा। मनोज को आश्चर्य होता था कि किस प्रकार ये लोग कभी ड्यूटी के अवतार बन जाते हैं, कभी विनय और करुणा की मूर्ति बनते हैं, कभी खुशामदी दिखलाई देते हैं; लेकिन वस्तुतः इन में कोई खूबी नहीं है। किसी का ध्यान रोगियों की ओर नहीं। सभी अपने मतलब से मतलब रखते हैं। डाक्टर से लेकर एक साधारण मेहतर तक किसी की बात सुनने को तैयार नहीं है।

बड़ी देर के बाद जाकर उस मेहतर के दर्शन हुए। मनोज की बात खत्म होने के पहले ही वह झुँझला कर बोला—तो मैं क्या करूँ; वह मरता है तो मरा करे, सड़ता है तो सड़ा करे। आज फजिर ही जाने किसका मुँह देखकर उठा था कि तब से ही परीशान हूँ। डाक्टर साहबके भाई आये हुए हैं। वे अपना थोड़ा-सा सामान स्टेशन पर ही छोड़ आये थे। उसे लेकर वापस लौटा तो नर्स ने अपनी बहन के यहाँ भेज दिया। उसकी बहन भी ससुरी ऐसी खूसट है कि मुझे अपने साथ लेकर सौदा-सुलूफ करने बाजार चली। वहाँ से लौटकर आया तो अब तुम सिर पर सवार हो। आखिर मैं भी आदमी हूँ, मेरी भी जान है। और सुबह से लेकर अभी तक पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं पड़ा है। अगर एक बूँद पानी भी डाला हो तो गऊ का रक्त समझ लो।

इस तरह उस मेहतर ने मनोज के सिर एहसान का एक बहुत ही बड़ा बोझ लाद दिया और तब पाखाना साफ करने के लिये उधर चला।



५

मनोज को अस्पताल में रहते हुए कइ महीने बीत गये थे। उसने यह भी सोचना छोड़ दिया था कि यहाँ से निकल कर वह कहाँ जायगा और क्या करेगा। पहले वह इन बातों को विचारा करता था और चिन्ता के मारे उसे तमाम रात नींद नहीं आती थी। उन दिनों उसे पुलीसवाले भी परीशान करते थे। वे तहकीकात के लिये आया करते थे कि तुम्हें किन लोगों ने मारा; क्यों मारा, उनलोगों के साथ तुम्हारी क्या अदावत थी, उनलोगों के नाम क्या थे? मनोज जो कुछ जानता था वह बतला देता था; लेकिन न कोई अपराधी पकड़े ही गये और न इस सम्बन्ध का कोई मुकदमा ही चला। कम्पाउन्डर उससे कहा करता था कि अजी तुम भी क्या लिये फिरते हो। कुछ ले-दे कर पुलीसवाले कितने मुकदमे हजम कर जाते हैं और रिपोर्ट दे देते हैं कि कुछ पता नहीं चला। भला पता क्यों नहीं चलेगा? तुमने गाँव का नाम बतला ही दिया, लोगों की शक्ल-सूरत, उम्र आदि सब कुछ जता ही दिया; अब बाकी क्या था जो पता नहीं चलता। लेकिन यहाँ तो अपने हलवे-माड़े से मतलब है मुर्दा दोजख में जाय या बहिश्त में। [धीरे-धीरे दिन इस तरह सरकते गये कि मनोज को ठीक-ठीक इसका पता भी नहीं लगा कि कब पुलीसवालों से उसका पिंड छूटा, कबसे उनलोगों ने आना छोड़ दिया और कबसे और किस प्रकार वह अपने भविष्य की चिन्ताओं से मुक्त हो गया।

धीरे-धीरे वह इस अस्पताल के ही वायुमण्डल में घुल मिल गया था। सदा वहीं की बात सोचता, वहीं के सम्बन्ध की कल्पनाएँ किया करता और वहीं की बातचीत भी करता था। वह इस बात से बिल्कुल बेखबर हो गया था कि इस अस्पताल से निकल कर उसे कहीं बाहर भी जाना है। वह यहाँ से बाहर जायगा; कहाँ जायगा; क्या करेगा? उस दिन इसी समस्या की चोट उसके कलेजे पर बड़े जोर से पड़ी। उसदिन शाम को डाक्टर ने उसे अपने कमरे में बुलाया और भली भाँति जांच करके कहा—अब तुम बिल्कुल अच्छे हो गये। थोड़ी-सी कमजोरी बची है, सो धीरे-धीरे वह भी दूर हो जायगी। कल सवेरे मुझे याद दिलाना, तुम्हें छुट्टी दे-दूँगा।

मनोज के कलेजे पर पत्थर का-सा बोझ पड़ गया। इस बात की उसने कल्पना भी नहीं कर रखी थी। घबरा कर बोला—लेकिन मुझे जो अभी पहले की-सी ताकत नहीं मालूम होती।

डाक्टर साहब ने कहा—खैर मनाओ कि तुम्हारी जान बच गई। मारने वालों ने इसकी कोई कसर ही नहीं छोड़ी थी। ओह! सिर में ऐसी भयंकर चोट! और उस पर भी तुम कहते हो कि पहले की ताकत नहीं मालूम होती। इसके लिए तुम्हें अलग से खरीद कर दवा खानी पड़ेगी। कल सवेरे इसकी भी याद दिला देना।

मनोज मलिन मन से आकर अपने विस्तर पर लेट गया। उसका दिल बैठ गया था। अस्पताल से कहीं जाने की उसकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। उसने दूसरे-दूसरे रोगियों को देखा था। वे अस्पताल से छुट्टी पाने के नाम से ही उछल पड़ते थे; लेकिन एक वह था कि अस्पताल से निकलने की बात सुनकर ही उसे रुलाई

छूट रही थी। रात को उसने कम्पाउन्डर को यह बात बतलाई; लेकिन उस ओर से कोई सहानुभूति का भाव नहीं मिला। कम्पाउन्डर जनता था कि अब इसके पास कुछ है नहीं जो दे सकता हो। जितनी जल्दी यह यहाँ से चला जाय उतना ही अच्छा। नर्स मनोज की बात सुनकर पहले तो चुप रही। उसके चेहरे पर हर्ष-विषाद का कोई भी भाव नजर नहीं आया। फिर थोड़ी देर के बाद जरा-सा मुसकिरा कर बोली—यह तो अच्छा ही है कि तुम घर चले जाओगे। कभी अस्पताल आओ तो मुझसे मिलना। तुम्हें देखकर मुझे खुशी होगी। मेहतर ने कहा, मैंने जी ान से तुम्हारी सेवा की है, जाते समय बखशिश देना भूल न जाना। शिवरतन डोम ने भी बखशिश की याद दिलाई। रात को वह बड़ी देर तक उसके पास बैठा रहा और इस बात का विस्तृत इतिहास वर्णन करता रहा कि कौन रोगी यहाँ से कब गया और उसे कौन-कौन-सी चीजें बखशिश में देता गया। अन्त में उसने टिप्पणी भी की कि रुपया-पैसा हाथ का मैल है। आदमी की जिन्दगी रहनी चाहिये फिर तो कितना-कितना कमा कर बटोर सकता है; लेकिन असल चीज है आदमी का दान-पुण्य। दाता की याद आदमी को सदा आती है। यों तो दुनिया में आदमी बहुत हैं, लेकिन कौन किसकी याद करता है ?

इस तरह उसने तरह-तरह से यह साबित करने का प्रयत्न किया कि मनोज का यह परम कर्तव्य है कि वह कुछ उसकी भेंट-पूजा करता जाय, अन्यथा वह कभी याद भी नहीं करेगा कि मनोज जी रहा है या मर गया।

उस रात को मनोज को ठीक-ठीक नींद नहीं आई। दूसरे दिन सवेरे ही वह अस्पताल से डिसचार्ज कर दिया गया। अस्पताल के सारे कपड़े उसे उतार देने पड़े और इसके बदले में उसे उसका पुराना सिल्क वाला कुरता मिला जो रक्त के धब्बों से परिपूर्ण था और मारपीट के समय जहाँ-तहाँ फट भी गया था। धोती की भी यही हालत थी। इस मामले में शिवरतन ने उसकी सच्ची सहायता की। उन खराब कपड़ों को खुद लेकर उसके बदले अपना कपड़ा दिया। यद्यपि वे कपड़े वैसे कीमती नहीं थे, फिर भी उनमें खून के धब्बे नहीं पड़े थे और न वैसे घिनौने और रोमाञ्चकारी दिखलाई देते थे। शिवरतन की यह सहायता नितान्त निःस्वार्थ नहीं थी। उसे मुनाफ़े में मनोज का एक जोड़ा जूता प्राप्त हुआ था जो वास्तव में काफ़ी दाम का था और उसकी पालिश आज भी चमक रही थी।

मनोज अस्पताल से निकला तो सही; लेकिन जाय कहाँ? जिधर पैर बढ़ जाते थे उधर ही जा रहा था। इस तरह चलते हुए वह शीघ्र ही थक गया। तीन-चार महीने से वह कभी इतना नहीं चला था। उसे मालूम था कि थाने में उसकी कुछ धर्मशाले से प्राप्त हुई चीजें मौजूद हैं; लेकिन वह पुलीससे घबराता था। वहाँ जाने की उसकी इच्छा नहीं थी। मालूम नहीं फिर कोई बखेड़ा खड़ा हो जाय तो वह क्या करेगा? थक कर वह एक दरवाजे पर बैठ गया और इधर-उधर की बातें सोचने लगा। वह सोच रहा था कि यदि वह कलकत्ते चला जाय तो शायद अपने लिये कोई काम प्राप्त कर लेगा। अब वह करेगा क्या? वह है किस लायक? दाहिना

हाथ टूट ही गया, शरीर अशक्त है और तमाम ज़िन्दगी बिताने को पड़ी है। जिस घर के दरवाजे पर वह बैठा था वहाँ 'TO LET' (किराये पर दिया जायगा) की तख्ती लगी हुईथी। कोई उससे पूछने भी नहीं आया कि तुम यहाँ बिना किसी मतलब के क्यों बैठे हो ?

बड़ी देर के बाद उसकी नींद टूटी औरवह उठ कर बैठ गया। न जाने कब वह ऊँघता-ऊँघता सो गया था जिसकी उसे बिल्कुल खबर नहीं थी। उसने उठ कर देखा कि दिन ढल गया है और उसे भूख लग रही है। उसने अपनी जेब का अन्दाज़ लिया। वहाँ इतने पैसे अवश्य थे जिनसे वह भलीभाँति अपनी भूख बुझा सकता था। इसमें भी कोई सन्देह नहीं था कि उनमें से कुछ पैसे तब भी बच रहते। उन पैसों को गिनता हुआ वह मुसकिराया और आप ही आप बोल उठा—मैं भी बड़ा आदमी होना चाहता था! पैसे वाला आदमी होना चाहता था!

यह कह कर वह आप ही आप हँसने भी लगा। उसी तरह वह हँसता हुआ उठा और हलवाई की दूकान की राह ली। पीछे उसका विचार पलट गया। उसने सोचा होटल में ही क्यों न खा लें। ऐसा उसका पहले का निश्चय नहीं था; लेकिन मोटे-मोटे अक्षरों में एक जगह उसने "हिन्दू होटल" का साइनबोर्ड देखा, तो आपही आप उसके विचार पलट गये। होटल के दरवाजे पर एक बहुत ही मोटा आदमी नंगे बदन अपनी बहुत बड़ी-सी तोंद लिये एक चौकी पर बैठा हुआ था। उसके ललाट पर रामानन्दी तिलक थी और गले में एक बहुत ही मैला जनेऊ लटक रहा था। मनोज ने उससे पूछा—बाबाजी, अभी भोजन मिल सकता है ?

उसने किसी भी अंग का संचालन नहीं किया। मूर्तिवत बैठे-बैठे जोर से जवाब दिया—नहीं !

मनोज को आश्चर्य हुआ। वह पहले भी इस होटल में आकर कई बार खा चुका था। उस समय यही आदमी था जो बार बार उससे आग्रह करता था कि आप इसी होटल में खाया कीजिये। हमारे इस होटल में शुद्धता का पूरा ख्याल रखा जाता है। इसके अलावा चाहे आप जब, जिस समय आइये उसी समय आपको भोजन तैयार मिलेगा। प्रतीक्षा की तनिक भी जरूरत नहीं; लेकिन अभी न जाने क्यों वह मुकर गया। शायद उसने मनोज को नहीं पहचाना है। मगर इससे क्या जब होटल है तो इसे खाना देना ही पड़ेगा। बोला—ऐसा क्यों कहते हो महाराज, आपके यहाँ तो हमेशा तैयार खाना मिलता है।

उस आदमी ने उसी तरह मूर्तिवत बैठे बैठे जवाब दिया—हाँ, मिलता है तो इससे तुम्हें क्या। तुम्हें यहाँ नहीं मिलेगा। बस। और क्या। सुन लिया न ? अब अपना रास्ता लो।

मनोज को बड़ा अचरज मालूम हुआ। उसका व्यवहार उसे अत्यन्त अरुचिकर प्रतीत हुआ। बोला—ऐसा क्यों कहते हो महाराज; क्या मैं आपको पैसे नहीं दूँगा ?

अबकी वह आदमी थोड़ा नम्र पड़ा। तनिक उसका माथा भी हिलता हुआ-सा दिखलाई दिया। कहा—पैसे तो तुम दोगे, जरूर दोगे ही; लेकिन मेरे यहाँ अछूतों को खिलाने का नियम नहीं है। सुन लिया न ? समझ गये न ? अब अपना रास्ता नापो।

मनोज यह जवाब सुनकर वहाँ तनिक भी नहीं ठहर सका।

शीघ्र ही वहाँ से आगे बढ़ गया। इस समय वह क्रोधित हो गया था और जोर-जोर से साँस ले रहा था। बार-बार उसकी इच्छा होती थी कि वह उसी ब्राह्मण के पास लौट जाय और उसके सिर पर सवार हो कर बोले—मैं अछूत नहीं, मैं एक शरीफ़ आदमी हूँ। तुम्हें खिलाना पड़ेगा—ज़रूर खिलाना पड़ेगा! लेकिन इस बात का परिणाम कोई अच्छा होगा इसकी उसे तनिक भी आशा नहीं थी। इसी कारण वह जैसे अपने आप को ढकेलता हुआ आगे बढ़ रहा था। इस उधेड़बुन में वह काफ़ी दूर आगे बढ़ गया। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ रहा था वैसे-वैसे मानों उसके पीछे दो प्रश्न दौड़ते हुए आ रहे थे। वे प्रश्न मानों उसके पीछे-पीछे चलते हुए पुकार कर पूछ रहे थे—तुम कैसे शरीफ़ हो? तुम्हारी शराफ़त की क्या पहचान है?

उस समय उसे केवल अपने कपड़े-लत्तों की ही याद थी। बेशक ये कपड़े शरीफ़ आदमियों की तरह नहीं है; लेकिन वह वास्तव में शरीफ़ आदमी है। मगर यह कोरा भ्रम था जो आधे घंटे के बाद उसे स्पष्ट मालूम हो गया। इस बीच में वह एक हलवाई की दूकान में भर पेट खा चुका था। वहाँ से निकल कर जब वह बीड़ी खरीदने के लिये एक पान की दूकान पर खड़ा हुआ तब उसे वास्तविक तथ्य का पता लगा। वहाँ एक बहुत बड़ा आइना था। उस आइने में अपनी सूरत देखते ही वह फक हो गया। मालूम हुआ जैसे वह बेहोश होकर गिर जायगा। पहले तो वह अपने को पहचान ही नहीं सका। इन कई महीनों में उसे अपना चेहरा देखने का कभी मौका नहीं लगा था। उसकी सूरत बिल्कुल बदल गई थी और वहाँ उस

पुराने मनोज की परछाईं तक भी नहीं थी। अब वह बिल्कुल नया और भद्दा आदमी मालूम होता था। दाढ़ी से भरा हुआ चेहरा, कोटरों में घसी हुई आँखें, उठी हुई नाक, गाल के दोनों ओर कई हड्डियाँ निकली हुईं। वह पहले की अपेक्षा घोर काला मालूम होता था। शरीर तो दुर्बल था ही। मनोज अवाक् होकर अपनी उस छाया की ओर मिनटों देखता रह गया। वहाँ पुराने मनोज का लेशमात्र भी चिन्ह नहीं था। उसे देख कर कोई भी इसका अनुमान नहीं कर सकता था कि यह आदमी किसी समय सुन्दर भी रहा होगा। सिर के केश बेतरतीब बढ़े हुए थे, उन पर कंघी नहीं की गई थी। इसलिये उसका चेहरा और भी भयंकर मालूम हो रहा था। खास करके दाहिना हाथ नहीं रहने के कारण वह बिल्कुल भिखमंगे के समान मालूम होता था। कई मिनट तक अपने आप को इस तरह देखते रहने पर मनोज यह ठीक निश्चय नहीं कर सका कि अपने इस परिवर्तन पर वह प्रसन्न हो या दुखित हो। उसका कलेजा कैसा-कैसा होने लगा। उसने सोचाः पुराना मनोज मर गया। वह सचमुच मर गया और आज जो आदमी आइने के सामने खड़ा है वह बिल्कुल दूसरा आदमी है। मनोज ने एक मर्मभेदी लम्बी साँस ली और दूकान से चल खड़ा हुआ।

शाम को वह स्टेशन की ओर जा निकला। रेलगाड़ी की सीटी सुनकर उसने सोचा क्यों न कहीं चल-चलें। कलकत्ते जा पहुँचे तो शायद निर्वाह हो जाय। लेकिन जायँ तो कैसे? जेब बिल्कुल खाली हैं। जो पैसे है उनसे भर पेट भोजन भी दो दिन का मुश्किल से निकल सकता है। इन्हीं विचारों में मशगूल वह

स्टेशन के आसपास चक्कर काटने लगा। वहाँ इक्के-ताँगे वालों की खासी भीड़ थी। मनुष्यों का आवागमन जारी था। जो लोग ट्रेन पकड़ने आते थे उनके चेहरे पर कैसी उत्सुकता रहती थी। उसे देख-देखकर मनोज का जी ललक उठता था कि वह भी ट्रेन पकड़ कर चला जाय। उसे कई विगत बातें स्मरण हो आईं। कई बार उसने बिना टिकट के मुसाफिरों की हँसी उड़ाई थी, उनका मखौल उड़ाते हुए उन्हें चोर तक कहा था; लेकिन आज वह भी दिन आया जब कि मनोज उन बिना टिकटवाले मुसाफिरों की अपेक्षा भी दयनीय अवस्था में था। मनोज फिर अपने आप पर ही झुँझलाया और बोल उठा—मनोज मर गया, पुराना मनोज मर गया-मर गया-हजार बार मर गया। वह बेवकूफ था, हवा में महल बनाना चाहता था, वह बड़ा आदमी होने के सपने देखता था। गरीब सदा गरीब ही रहेगा। अगर वह ऊँचा उठना चाहे तो उसे धक्के देकर नीचे उतार दिया जायगा।

यह बड़बड़ाता हुआ वह आपही आप इस तरह हँस उठा कि उसे स्वयं आश्चर्य हुआ कि वह क्या कर रहा है। उसने अनुभव किया कि मेरा दिमाग खराब हो रहा है, मैं पहले की अपेक्षा बहुत ही कमजोर हूँ। फिर वह अस्पताल की बातें सोचने लगा। उसे शिवरतन डोम की याद आई, उस कम्पाउन्डर की याद आई। उसका वह मूँछों के नीचे-नीचे मुसकिराना याद आने लगा। वह भूल गया कि आज ही उसने उस कम्पाउण्डर और शिवरतन को देखा है, आज ही सबेरे उनलोगों से विदाई ली है। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उन लोगों से मुलाकात हुए वर्षों बीत गये

और तब से वह जहाँ-तहाँ मारा मारा फिर रहा है। उसे आया कि चलें और चलकर उन लोगों से मुलाकात करें। शिवरतन उससे घुलमिल कर बातें करेगा। वह अच्छा आदमी है। नर्स उसे देखकर खुश होगी। जरा मुसकिरायेगी, फिर पूछेगी—क्योंजी, कैसे हो?

लेकिन इन उड़ती हुई कल्पनाओं के अन्दर वह अपने आपको ठीक-ठीक स्थिर नहीं रख सका। सारी बातों के आवरण को वेध कर बार-बार एक ही बात उसके कलेजे पर भाले की भाँति लगती थी कि कहाँ जाय? क्या करे?

उसे उन्नाव से जाना ही होगा, चाहे जहाँ चला जाय। और वह तेजी से चल कर स्टेशन पर पहुँचा। प्लैटफार्म पर कोई गाड़ी खड़ी थी और लोग अन्दर जा रहे थे। एक चेकर सबका टिकट देख रहा था कि कोई बिना टिकट तो नहीं जा रहा है। मनोज की हिम्मत टूट गई। वह वहाँ से दबे पाँव लौट गया। लेकिन वह फिर दो ही तीन मिनट के अन्दर लौट आया। अबकी उसने अपने कलेजे को कड़ा बना लिया था। चेकर को चुत्ता देने के लिये उसने अपना चेहरा ऐसा बनाया मानो किसी जरूरी काम से वह इतना परीशान और बदहवास है कि किसी ओर भी ध्यान नहीं दे सकता। इसी तरह अत्यन्त अस्तव्यस्त चेहरा बनाये वह स्टेशन के अन्दर घुस गया। जब तक चेकर अरे-अरे कर रहा था तब तक वह भीड़ में शामिल हो चुका था।

—:o:—

६

मनोज अब रेलगाड़ी का यात्री था। वह जहाँ तक बचता हुआ जा सकता था वहाँ तक चला जाता था। किसी क्रू से मुलाकात होती, तो साफ-साफ कह देता कि मेरे पास टिकट भी नहीं, पैसे भी नहीं। भूखों मर रहा हूँ; यदि दया करके आनही कुछ...! इस पर क्रू उसे पैसों के लिये यथाशक्ति तंग करते। उसकी तलाशी ली जाती, तमाम टटोल कर देखा जाता कि कहीं कुछ पैसे छिपा तो नहीं लिये हैं। कोई-कोई चिढ़ कर उसे चपत भी मारते थे और दुर्वचन कहने की तो बात ही अलग है। शायद ही कोई ऐसा क्रू होगा जिसने उसे गाली न दी हो। जहाँ उसे उतार दिया जाता वह उतर जाता। जब कोई दूसरी गाड़ी आती, तो लोगों की आँख बचाकर उसपर बैठ जाता। उसे इसकी तनिक भी परवा नहीं थी कि मैं पूरब जा रहा हूँ या पच्छिम; यह ब्रांच लाइन की गाड़ी है या मेन लाइन की। जिस ओर की गाड़ी मिलती उसी पर जा बैठता और जहाँ उतार दिया जाता वहीं चुपचाप उतर जाता। बहुत से क्रू तो उसे पहचान गये थे और उसकी सूरत देखते ही उसे गाली देते थे। जेब में जो उसके पैसे थे सभी समाप्त हो चुके थे। वह एक-एक पैसे की घुघनी खाकर रोज रहता था। पीछे जब भूखों मरने की नौबत आ गई, तो वह मुसाफिर खाने में जाकर चक्कर काटता रहता। जहाँ कहीं कोई परिवार सहित यात्री नजर

आता कि फौरन उसके पास पहुँच कर सलाम करता। पेट भर भोजन करने की युक्ति उसे आपसे आप मालूम हो गई थी। उस यात्री के लिये पानी भर कर ला देता, पान खरीद कर लाता, उनके बच्चों को गोद में ले लेता। यहाँ तक कि यदि कोई बच्चा मुसाफिरखाने में मैला कर देता, तो वहाँ की पुलिस की आँखों में पड़ने के पहले ही वह फेंक-फाँक कर दुरुस्त कर देता। इसके बदले में उसे खाने को अवश्य मिल जाता था। इस तरह खा-पीकर जब वह तरोताजा होता, तो फिर पुनः किसी गाड़ी में चढ़ कर कहीं पहुँच जाता। उसे मालूम होने लगा मानों सारी दुनिया उसके लिये बराबर है। कभी-कभी उसे आश्चर्य हो आता था कि लोग क्रू और टिकट कलक्टर की बातों से क्षुब्ध क्यों हो जाते हैं, इससे अपमान क्यों मान लेते हैं? वह उन लोगों की अयाचित सेवा के लिये भी सर्वदा प्रस्तुत रहता था। एक क्षण पहले जिस क्रू ने उसे मारा हो उसीके लिये सिगरेट खरीद लाने को वह दूसरे ही क्षण दौड़ता हुआ दिखलाई देता था। वह भली भाँति जान गया था कि यद्यपि ये लोग गालियाँ देते हैं, मारते हैं; लेकिन फिर भी उनके दिल के किसी कोने में ऐसे यात्रियों के लिये सहानुभूति रहती है। उसने ख्याल किया कि शायद बगैर टिकट के सफर करनेवालों को मारने या गाली देने के लिये ही इनकी नौकरी है। यह सब कुछ जैसे आप से आप हो जाता था। इसकी उनलोगों को आदत हो गई थी। मनोज जैसे लोग बिना टिकट के सफर करते ही थे और क्रू लोग उन्हें डिब्बे में पाकर गालियाँ देते और मारते ही थे। उसके बाद जब मनोज प्लैटफार्म पर उतर आता था तो वे लोग वैसे बुरे नहीं मालूम होते

थे। वह देखता था कि ये भी आदमी ही हैं। लोगों से घुलकर मिलते हैं, हँसते-बोलते हैं, तरह-तरह की बातें करते हैं। मनोज स्टेशन के किसी भी कर्मचारी के लिये खुदाई खिदमतगार समझा जाता था। किसी चीज की जरूरत हुई, जाओ खरीद लाओ; कोई चीज पहुँचानी है, जाओ पहुँचा आओ; किसी को बुलाना है; जाओ बुला लाओ। इसी तरह दिन बीत रहे थे। एक-दो दिन नहीं, पूरे तीन-चार महीने बीत गये। मनोज अपने लक्ष्यस्थान पर नहीं पहुँच सका। उसका वह गन्तव्य स्थान था कलकत्ता। कलकत्ते पहुँचने की उसकी जबरदस्त अभिलाषा थी। उसके दिल में एक बद्धमूल विश्वास जम कर बैठ गया था कि कलकत्ते पहुँच कर वह अवश्य ही कोई काम ढूँढ़ निकालेगा। इस तरह का बेढंगा सिलसिला कब तक चल सकेगा या कबतक चला सकेगा? और वह कलकत्ते पहुँचने का उद्योग प्राणपन से करता था।

तैमूरलंग ने इक्कीस बार ही समरकन्द पर चढ़ाई की थी; लेकिन मनोज ने तो असंख्यबार कलकत्ते पर चढ़ाई की, मगर कभी मुगल सराय से आगे नहीं बढ़ सका। न जाने उसके भाग्य में क्या बदा था कि वह हमेशा मुगलसराय में उतार दिया जाता और फिर किसी पच्छिम जानेवाली गाड़ी पर बैठ कर इधर-उधर चक्कर काटा करता। इस तरह बिना टिकट के सैर करनेवाला अकेला एक मनोज ही नहीं था, इनलोगों का एक विशृंखल गिरोह-सा था। वे कभी कभी आपस में मिलते थे और जान-पहचान तथा साहब-सलामत होती थी। उनलोगों में कोई कलकत्ते जाना चाहता था, कोई बम्बई, कोई वाल्टेयर, कोई पूना। इन लोगों की सँख्या घटती-बढ़ती रहत

थी। जो अपने गन्तव्य स्थान को पहुँच जाता था वह वहाँ पहुँच कर गायब हो जाता था। यद्यपि इस प्रकार के यात्री एक-दूसरे को जानते-पहचानते रहते थे; लेकिन उनलोगों के अन्दर कोई मेल नहीं था। सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। पेट के चलते सभी तबाह रहते थे। सोचा करते थे कि किसी तरह पार लग जाय तो जान बचे। इन लोगों के अन्दर प्रायः सभी तरह के लोग थे। कोई कोई तो काफी पढ़े-लिखे मालूम होते थे जो सदा सिनेमा स्टारों की बातचीत करते थे। उन में मूर्ख अबोध थे, अपढ़ अज्ञानी थे और ज्ञानवान ग्रेजुएट भी थे। ऐसे जब दो लोग आपस में मिलते थे तो बैठ कर इस बात का आविष्कार करते थे कि किस उपाय से कहाँ पहुँचा जा सकता है। इन उपायों के अन्दर भोजन का उपाय भी सम्मिलित रहता था। जब कभी नये क्रू दिखलाई देते थे तो इनलोगों के समाज में हलचल मच जाती थी, क्योंकि नये क्रू बड़ी क्रूरता से काम लेते थे।

मुगलसराय पहुँचने पर यही बात हो जाती थी। उधर नये-नये क्रू थे। वे बड़े जालिम थे। मनोज बहुतेरा दाँव-पेंच लड़ाता; लेकिन किसी तरह भी आगे नहीं बढ़ पाता था। एक बार रात को उसने बड़ी सावधानी से काम लिया। छिपता हुआ किसी तरह आरा स्टेशन पार हो गया; लेकिन दानापुर पहुँचते ही एक क्रू की निगाह उसपर पड़ गई। पटना जंकशन पर उसने बड़ी बेरहमी से मनोज को मारते हुए गाड़ी से उतार दिया। केवल इतना ही नहीं, उसका कान पकड़ कर उसे फाटक से बाहर ढकेल दिया और वहाँ पुलीस के सिपाही को सावधान कर दिया कि यह

किसी तरह भी स्टेशन के अन्दर नहीं घुसने पावे। भोजपुरिया सिपाही भी गाली देता हुआ उसकी ओर झपटा; लेकिन मनोज तब तक दौड़कर पकड़ के बाहर हो गया था।

उसने अपना बहुत सा वक्त वहीं के मुसाफिरखाने में सोकर बिताया। वह दुखित नहीं था, प्रसन्न था, क्योंकि अपने को वह कलकत्ते से काफी निकट पा रहा था। उसने यह तयकर लिया था कि अब पच्छिम जानेवाली गाड़ी पर नहीं बैठेगा। पूरबवाली गाड़ी पकड़ते-पकड़ते किसी न किसी तरह पन्द्रह-बीस दिनों में कलकत्ते अवश्य पहुँच जायगा। वह अपने ऊपर क्षुब्ध भी होता था कि फालतू इधर-उधर का चक्कर क्यों काटता रहा, सदा पूरब की गाड़ी पकड़ता तो अबतक कलकत्ते अवश्य पहुँच गया होता। लेटे-लेटे उसे याद आने लगा कि हरद्वार के स्टेशन पर उसने क्या किया था, लखनऊ के मुसाफिर खाने में वह किस तरह टहल रहा था। धीरे-धीरे उसे नींद आ गई और उसने सपने में देखा कि वह कलकत्ता पहुँच गया है। एक बहुत बड़ी इमारत में काम कर रहा है। उसके पास बहुत पैसे हो गये हैं। उसने फिर देखा कि उसकी शादी हो रही है। वह मड़वा में बैठा है और उसके ससुर गुस्सा से आग-बबूला हुए जा रहे हैं। ; उनका कहना था कि धोखा देकर शादी क्यों कराई गई जब कि वर का दाहिना हाथ टूटा हुआ है। लेकिन सपने के उस दृश्य में एक बड़ी विचित्र बात यह थी कि उसके ससुर की शक्ल उस क्रू के समान थी जिसने मनोज को गाड़ी से उतार दिया था और धक्का देकर प्लैटफार्म से बाहर कर दिया था। मनोज अपने उस ससुर के क्रोध से तनिक भी घबराया नहीं,

बल्कि प्रसन्न ही था, क्योंकि विवाह के अधिकाँश रस्म अभी तक समाप्त हो चुके थे। जो कुछ थोड़ा-सा बाकी था वह भी समाप्त ही हुआ जा रहा था। उसने ससुर को समझाया कि हाथ नहीं होने से कोई हर्ज नहीं हुआ, वह रबर का हाथ लगा लेगा। ससुर ने पूछा-क्या रबर का हाथ भी होता है? मनोज ने जवाब दिया—जरूर! इस पर ससुर प्रसन्न हो गया। अब की उसका चेहरा उन्नाव के उस कम्पाउन्डर की तरह था जो मूँछों के नीचे मुसकिराता था। कम्पाउन्डर ने पूछा-क्या समाचार है मनोज? मनोज ने कहा—जरा नर्स से भेंट करने जाता हूँ। वह नर्स के यहाँ पहुँचा तो वह घूँघट खींच कर खड़ी हो गई। अरे! यही तो उसकी बीबी है। उसकी कलाई में लाल-लाल चूड़ियाँ चमक रही हैं। लेकिन यह उसकी बीबी कैसे हो सकती है? मनोज का विवाह कब हुआ? किसके साथ हुआ?

मनोज ने घबरा कर आँखें खोल दीं। दोपहर का समय हो चुका था। मुसाफिर खाने में एक आलस्य भरी शान्ति व्याप रही थी। कोई ऊब रहा था, कोई सो रहा था। चारों ओर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं। इस सपने ने उसकी एक प्रसुप्त प्रवृत्ति को जगा दिया था। अब तक उसने कभी स्त्री की आवश्यकता महसूस नहीं की थी। मगर उसे बार-बार याद आने लगा कि जब वह दवा बेंचा करता था तो कितनी स्त्रियों से मुलाकात कर चुका था। वे कितनी अच्छी थीं! वह सोच आता था, सोच जाता था लेकिन किसी स्त्री में उसे कोई बुराई नजर नहीं आ रही थी। सभी अच्छी थीं, बहुत अच्छी थीं। उसकी दृष्टि एक बैठी हुई महिला पर

पड़ी। वह दीवार से सट कर बैठी हुई अपने शरीर पर पंखा झल रही थी। उसके सिर पर सिन्दूर की मोटी-सी रेखा थी जो नाक से लेकर ब्रह्माण्ड तक पहुँच गई थी। ललाट पर अठन्नी के बराबर एक टिकली चिपकी हुई थी। शरीर का रंग काला, मोटे-मोटे होंठ। गाल उभरे हुए थे और उन पर तरुणाई की आभा थी। लेकिन यदि सच पूछा जाय, तो न तो वह स्त्री सुन्दरी थी और न सुन्दरी कही जा सकती थी। मनोज एकटक लोलुप दृष्टि से उस औरत की ओर घंटों देखता रहा। उस औरत की बगल में एक बहुत बड़े गट्ठर की तकिया बना कर एक बूढ़ा आदमी सो रहा था। निद्रित अवस्था में उसके मुँह पर बहुत-सी मक्खियाँ बैठी हुई थीं। उनमें से जब कोई मक्खी नाक में घुसने का प्रयत्न करती, तो वह बूढ़ा हाथ हिला कर उन मक्खियों को भगा देता था। वह उस औरत का शायद बाप था या शायद ससुर। यह निश्चित था कि यह औरत उसीके साथ कहीं जा रही थी। मनोज उठा और उसे दिखला कर वहीं एक पैसे का पान खरीद कर खाया। उस पान की दूकान पर आइने में अपना चेहरा देखने से भी नहीं चूका। उसका शरीर अब भी दुर्बल था, चेहरे पर रुखाई थी। वह किसी तरह भी सुन्दर नहीं कहा जा सकता था। आइने में उसने स्पष्ट देखा कि उसके अन्दर कोई भी ऐसी खूबी नहीं है कि वह किसी भी महिला को अपनी ओर आकर्षित कर सके। फिर भी वह बार-बार उस महिला की ओर देखता रहा और उसे आकर्षित करने का प्रयत्न करता रहा। वह औरत उसकी इन सारी बातों से बेखबर थी। वह वहाँ घंटों बैठी रही, मनोज की ओर देखी भी; लेकिन जान नहीं पाई कि इसके अन्दर कौन-सा भाव है। मनोज भी अपने विषय

में ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि वह ऐसा क्यों कर रहा है। यह काम अच्छा है या बुरा यह सोचने की उसे फुरसत ही कहाँ थी। उसे तीव्रता से केवल यही खयाल हो रहा था कि किस तरह इस औरत को अपनी ओर आकर्षित करे और अगर सम्भव हुआ तो उससे दो-चार बात करके भी अपने दिल को बहला ले। इसके सिवा और कोई बात उसके मन में अभी तक नहीं थी। फिर भी उसे सोचना चाहिये था कि भला कौन ऐसी अभागिन औरत होगी जो उसके समान भद्दे, कुरूप और रूखे आदमी की ओर ध्यान देगी।

इसी समय मुसाफिर खाने के बीच से होते हुए दो आदमी गुजरे। उन में एक पुरुष था, दूसरी एक गोरी स्त्री थी। वह कोई अट्ठारह-उन्नीस की होगी। जरा कुछ नाटी-सी थी, मगर एकबारगी नहीं। शरीर भरा हुआ, गोल चेहरा। होठों पर एक स्मित मुसकान जो आकर भी नहीं आना चाहती थी। उसके साथवाला युवक सम्भवतः उसका पति था और वह उसके साथ बड़ी प्रसन्नता से चल रही थी। मनोज ने उनलोगों की ओर देखा और सोचा, आह, ये कितने सुखी हैं!

वह उठ कर आगे बढ़ गया और जाकर उनलोगों के सामने खड़ा हो गया।

'क्या माँगते हो, भीख'? उस युवक ने पूछा—'तुम्हारी तरह बहुत से गरीब हैं। शायद हम भी हैं।'

यह कह कर उसने हँसते हुए अपनी प्रेमिका की ओर देखा। वह आँखों में लजाई और होठों में मुसकिराई। तनिक अनखा

कर बोली—जाओ, तुम भी बड़े हो; जो मुँह से निकलता है वही कह डालते हो!

उसकी ओर बिना कोई ध्यान दिये ही वे लोग आगे बढ़कर कपूर के होटल में घुस गये। मनोज के हृदय से एक आह निकली और वह वहीं पर बैठकर फिर उस औरत की ओर ध्यान जमाने लगा। वह उसी तरह बैठी हुई अपने शरीर पर पंखा झल रही थी और वह बूढ़ा चुपचाप निद्रित सो रहा था। मनोज के जी में कई बातें उठीं; इस औरत को लेकर कहीं भाग जाय; इससे बातचीत करे। जरा इसे हँसा दे और इसका हँसता हुआ चेहरा देखे।

वह वहाँ से उठा और निःसंकोच उस स्त्री के पास जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह दीवार पर कंधे का बोझ देकर खड़ा हो गया और शान्तभाव से पूछा—तुम कहाँ जा रही हो?

उस औरत ने मनोज की ओर देखा, उसका प्रश्न सुना भी; लेकिन कोई जवाब नहीं दिया। केवल उसकी ओर आश्चर्य और भय से देखती रही।

मनोज ने फिर पूछा—तुम कहाँ जाओगी?

फिर भी उस स्त्री ने कोई जवाब नहीं दिया। अपने पंखे के छोर से जरा-सा ठेल कर उस बूढ़े को जगा। दिया और बोली—बाबा, देखो, यह क्या पूछते हैं!

बूढ़ा उठकर बैठ गया और गौर से मनोज की ओर देखने लगा। मनोज भी उसके समीप जा बैठा। बूढ़े ने पूछा—क्या पूछते हो भाई!

मनोज ने कहा—आपलोग कहाँ जा रहे हैं?

हम तो जहानाबाद जा रहे हैं। और तुम?

मनोज ने कहा—तब तो हमलोगों का साथ नहीं हो सकेगा। मैं कलकत्ते जा रहा हूँ।

'ओ, ऐसी बात!' बूढ़े ने अँगड़ाई लेकर कहा. फिर अपनी गठरी पर भार देकर लेट गया। लेटे-लेटे ही बोला—तुम्हारा घर किस जिले में है भाई?

मनोज ने अंटसंट किसी जिले का नाम ले लिया। बोला—हमलोग किसी वक्त बड़े अच्छे थे। समय के फेर से हालत कुछ खराब हो गई है। लेकिन फिर भी मैं अपने को सम्भाल लूँगा। अब यही फिक्र है कि किसी तरह घर बसा लें। आखिर इधर-उधर मारे फिरने से तो काम नहीं चलता।

अबकी बूढ़े ने फिर गौर से उसकी ओर देखा। कुछ समझा, कुछ नहीं भी समझा। हँसता हुआ बोला—तुम्हारा एक हाथ जो नहीं है। किस बिरते पर कमाओगे और कैसे बच्चों का लालन-पालन करोगे। अभी घर-गृहस्थी के फेर में मत पड़ो भाई। कुछ कमा-कजा कर मुट्ठी में कर लो तब शादी-ब्याह के झंझट में पड़ना। इसी लड़की की माँ थी। उसने किस दिन उलाहना नहीं दिया होगा। कहीं कुछ खेती-बारी है?

नहीं!

तब?

मनोज निरुत्तर था। उसे शर्म आ रही थी कि मैंने क्या कह दिया। भला ऐसा भी कुछ कहना था! खाने का ठिकाना नहीं, जिन्दगी बिताने की गुँजाइश नहीं; लेकिन उसने बात बिगाड़ दी थी और बिगड़ी हुई बात बनती नजर नहीं आती थी।

—:o:—

७

मनोज इधर कई सप्ताह से पटने के मुसाफिर खाने में ही चक्कर काट रहा था। कई बार उसने पूरबवाली गाड़ी पकड़ने की चेष्टा भी की; लेकिन मार कर स्टेशन से निकाल दिया गया। सभी पुलीसवाले उसे पहचानने लगे थे और उसकी सूरत से नफ़रत करते थे। हारदाँव देख कर मनोज मुसाफिरखाने में मुसाफिरों की सेवा करता। मिला तो खाया, नहीं योंही सो जाया करता था। कभी-कभी उसे खुद अचरज मालूम होता कि वह क्यों जी रहा है? किस लिये जी रहा है? अपनी जिन्दगी में उसे कोई महत्व नहीं मालूम होता था और वह अपने आपसे स्नेह भी नहीं रखना चाहता था। इस बीच में उसने अपने लिये एक काम का भी जोगाड़ कर लिया था जिसके लिये उसे गर्व होता था। वह उस पानवाले की सेवा किया करता। कभी पानी ला देता, कभी बाजार से कुछ सौदा खरीद कर लाता। रात के समय उस पानवाले का पैर भी दबाना पड़ता था। इसके बदले में उसे प्रतिदिन शाम को छ पैसे मिल जाते थे। वह उन पैसों को यथासाध्य बचाने की चेष्टा किया करता था। जब तक बिना खर्च के काम चल सकता था तब तक वह योंही चला लेता। जब कोई भी युक्ति काम न देती तब उन पैसों में हाथ डालता। इस तरह उसने करीब तेरह-चौदह आने पैसे बचा लिये थे। रात के समय जब वह सोता तो लेटा-लेटा सोचा करता कि वह कोई बढ़िया काम पकड़ेगा। उसका एक छोटा-सा घर

होगा, थोड़ी-सी जमीन-जायदाद होगी, शादी करेगा, बाल-बच्चे होंगे। खुशी-खुशी दिन बीता करेगा।

इन दिनों उसे एक चीज में और भी रस मिलने लगा। मुसाफिरखाने में भीख माँगने के लिये एक अन्धा और बूढ़ा भिखमंगा आया करता था। उसकी लाठी टेक कर एक छोकरी आगे-आगे चलती थी। उम्र सोलह-सत्रह के करीब होगी। वह गोरी नहीं थी, सुन्दर नहीं थी; लेकिन भोली भाली थी और अच्छी थी। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं; फटी-पुरानी और मैली साड़ी में भी वह अच्छी लगती थी। जब तक वह मुसाफिरखाने में रहती तब तक मनोज बार-बार उसकी ओर देखता। मन ही मन वह उस लड़की से प्रेम करने लगा था। वह सदा उस छोकरी का ध्यान करता। बार-बार तरह-तरह से उसके बारे में सोचा करता। वह कितनी भोलीभाली है, कैसी अच्छी लगती है। अपने बाप के साथ वह कैसे रहती होगी? घर पर उसके और कोई है या नहीं? उसके मन में अक्सर उठता था कि उस लौन्डिया से शादी करके घर बसा ले; लेकिन किसीसे कहने की हिम्मत नहीं होती थी। अपनी बात उसने अपने तक ही रखी। बाहर किसी से कह कर उसे हँसने का मौका नहीं दिया। बहुत दिन पहले उसने प्रेमरस के कई दिलचस्प उपन्यास पढ़े थे! उन पुस्तकों को पढ़ कर उसने यही निष्कर्ष निकाला था कि आदमी का प्रेम न जाने कब, कैसे और किस तरह हो जाता है यह नहीं जाना जा सकता। वह समझता था कि उस छोकरी के प्रति उसकी आसक्ति आपसे आप उत्पन्न हो गई है और वह उससे सचमुच प्रेम करता है—सच्चा प्रेम!

वह उस अन्धे भिखारी से कभी-कभी बातें करता था। उस भिखमंगे

का नाम भी भिखारी था। गुलाबबाग मुहल्ले में किसी कोईरी की बाड़ी के एक कोने में उसका निवासस्थान था। भिखारी बतलाता था कि वह खान्दानी भिखमंगा है। वह जाति का गोसाई है और उसके तीन पुश्तों से भीख माँगने का काम चला आ रहा है। उसके पहले उसके वंशवाले क्या करते थे, यह पता नहीं। साथ ही उसने एक विचित्र बात यह भी बतलाई कि उसके वंश में कई पुश्तों से एक ही लड़का होता है और एक ही लड़की। लड़का सदा जन्मान्ध होता है और लड़की की आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं। वह बूढ़ा अपनी लड़की को बिलकुल बच्ची ही समझता था इसलिये उसके सम्बन्ध में कहता था कि जब वह सयानी हो जायगी तब घर द्वार देखकर इसकी कहीं शादी कर देंगे। जिस समय उस छोकरी के सम्बन्ध की बातें होती थी उस समय वह लजा कर कोई तिनका लेकर तोड़ने लगती थीं। उसका नाम था कोसी।

मनोज बड़े भक्तिभाव से भिखारी से सवाल पूछा करता था और उसका जवाब इस तरह सुनता था मानों कोई भक्त कबीर दास का पद सुन रहा हो। बीच-बीच में वह कोसी की ओर आँखें भी घुमा लेता। उधर कोसी के मन में मनोज प्रति कोई आकर्षण का भाव नहीं देखा गया। शायद वह अपने आप से अनभिज्ञ थी या मनोज को नापसंद करती होगी। मनोज उसे प्यार करने को कितना लालायित रहता था यह कह कर नहीं बतलाया जा सकता। उसने कई बार भिखारी से कहना चाहा कि अपनी लड़की को मुझे दे दो; लेकिन नहीं कह सका। वह सोचता था कि जरा कोसी को भी जाँच लें तब कहें।

समझ में नहीं आता कि प्रेम आखिर है क्या वस्तु। किस तर्कशास्त्र के अनुसार वह अपना जोड़ा ढूँढ़ता है और उसका मनोविज्ञान क्या है। मनोज खेला-खाया हुआ जीव था। औरत क्या चीज है, इस बात से वह अनभिज्ञ नहीं था; लेकिन फिर भी वह कोसी जैसी भिखारी की बेटी की मूक अभ्यर्थना किया करता था। उस पर जैसे कोई नशा-सा सवार हो गया था और उसे अपनी जिन्दगी में रस मिलने लगा था। सम्भवतः इसी रस की कमी के कारण उसने कोसी को अपना दिल दिया था। जिस आदमी को वास्तविक लड्डू खाने को नहीं मिलते वह मनमोदक से ही सन्तुष्ट रहता है। मनोज भी कोसी को लेकर तरह-तरह की कल्पनाएँ किया करता था। अपनी जिन्दगी में वह जाने क्या हो जायगा और कोसी को किस प्रकार रानी बनाकर रखेगा इसी असम्भव कल्पना में उसका समय बीतता था। अब वह पहले की अपेक्षा अधिक फुर्तीला हो गया था और शाम को बड़ी उत्सुकता से कोसी के आने की बाट देखा करता था। जिस दिन वह न आती उस दिन उसका दिल बैठ जाता। स्टेशन की सारी चहल-पहल और व्यतिव्यस्तिता उसे नितान्त सूनी मालूम होने लगती। रात को उसका जी कैसा-कैसा तो उमड़ने लगता। मन पर कुछ बोझ सा, कुछ ऐंठन-सी मालूम होती। वह चित्त लेटा हुआ छाती पर हाथ रखे जाने क्या-क्या सोचा करता था। एक अजीब हवा से उसका हृदय आन्दोलित होता रहता था। नहीं कहा जा सकता कि वह सम्पूर्ण अच्छा ही था और न यही कहा जा सकता है कि वह बिल्कुल बुरा ही था। मगर यह ठीक था कि वह अपने में अपने को नहीं पाता था। कहीं दूसरी

जगह उसका सन्धान मिलता था। शायद यही उसके जीवन का रस था और इसी से उसे अपने प्रति दिलचस्पी मालूम होती थी। वह आत्मतुष्ट-सा हो रहा था यद्यपि वह जैसा अपने को समझना चाहता था वैसा नहीं था।

और कोसी इन बातों से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। उसे इस प्रेम का कोई पता नहीं था। उसने शायद ही कभी मनोज को याद किया हो। वह तो उसका नाम भी नहीं जानती थी। दुनिया में उसने हजारों आदमियों को देखा था। उसी में एक मनोज भी था। जिस प्रकार वह अपने यौवन से अनभिज्ञ थी उसी प्रकार मनोज भी उसके हृदय के बिल्कुल अगोचर था।

उधर मनोज को जब कभी मौका मिलता तब उस बूढ़े से दो-चार बात अवश्य ही कर लेता। बूढ़ा भी उसकी बातों का जवाब दे लेता, मगर उसकी भी मनोज के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं थी। मनोज प्रायः रोज ही इस बात का संकल्प करता था कि आज भिखारी से उसकी बेटी के बारे में अवश्य कहेगा; लेकिन कभी कह नहीं पाया। केवल कोसी को देख कर ही तृप्त होना पड़ता था। वह तृप्ति कुछ वैसी ही थी जैसे आग में पेट्रोल डालने से हो सकती है। और भी ज्वालायें धधकती हैं, और भी लपटें निकलती हैं। मनोज के जी की कुछ ऐसी ही हालत थी। कोसी को देखकर उसकी वासनायें भड़क उठती थीं। वह उसे एक बारगी अपने कलेजे से चिपका लेना चाहता था। चाहे उसके बाद मर भी जाना पड़े तो भी कोई परवा नहीं।

लेकिन फिर भी वह अपनी उसी पुरानी जगह पर खड़ा था जहाँ

से वह चला था और उधर मन लम्बी-लम्बी यात्रायें समाप्त कर रहा था। वासना की आग निरन्तर उसके दिल में धधक रही थी। अब वह कोसी से अपना प्यार ही जताना नहीं चाहता था, अपना प्रेम ही निवेदन करना नहीं चाहता था, बल्कि उसके भाव कोसी के प्रति भीषण रूप से कामातुर हो उठे थे। कोसी! कोसी! जैसे वह उसके जी में जीवन में चिता की भाँति धधक रही थी। आदमी आखिर अपने को कितना छिपा सकता है?

एक दिन वे लोग देर से आये और देर से लौटे। जिस समय वे जा रहे थे उस समय रात हो चुकी थी। कोई आठ बजे होंगे। सारा स्टेशन बिजली के आलोक से जगमगा रहा था। कोई गाड़ी आई थी जिस कारण यात्रियों की भीड़ और इक्के वालों के शोरगुल से कान के पर्दे फट रहे थे। मनोज ने उन दोनों का पीछा किया और उसे एक सुयोग भी मिल गया। बूढ़ा जरा पीछे छूट गया था और कोसी कुछ आगे बढ़ गई थी। मनोज लपक कर उसके सामने जाकर खड़ा हो गया और जबतक कोसी कुछ बोले तबतक उसने आवेश में उसकी कलाई पकड़ ली। कोसी घबरा कर जोर से बोली—यह क्या! यह क्या करते हो?

मनोज उससे अपना प्यार जताना चाहता था, मगर आवेश के कारण उसका गला फँस गया। मुँह से कोई आवाज नहीं निकली। उसने जोर से कोसी को अपनी ओर खींचा। इस समय वह थरथर काँप रहा था। उसका कलेजा बेतरह धड़क रहा था और आँख निकली जा रही थी। जब वह कुछ बोल न सका तो उसने कोसी की कलाई पर अपनी मुट्ठी और भी जोर से कस ली और

उसे तेजी से अपनी ओर खींचा। वह स्थान और काल का ज्ञान भूल कर कोसी को वहीं पर अपनी छाती से लगा लेना चाहता था, उसे चूमना चाहता था और प्यार करना चाहता था। कोसी प्राणपन से चिल्ला उठी मानों उसे भूत ने पकड़ लिया हो—दौड़ो ! दौड़ो ! बचाओ, मुझे बचाओ !

भिखारी ने यह आवाज सुनी तो वह भी घबरा कर चिल्लाने लगा और लोगों को मदद के लिये पुकारने लगा। इधर-उधर सड़क पर चलनेवाले सभी चौकन्ने हो गये। मनोज को भी होश हुआ और वह भागा। वह जिस ओर जाता उसी ओर उसपर मार पड़ती। मारो साले को ! इसने बीच सड़क पर एक औरत को पकड़ लिया ! साले को पकड़ कर जिन्दा जला दो !

मनोज मार खाता हुआ ही एक आहाता फाँद कर किसी की फुलवारी में घुस गया और वहाँ एक झाड़ी में बैठ कर थरथर काँपने लगा। उधर हल्ला सुन कर कालेज के कुछ विद्यार्थी दौड़ते हुए आ गये। वे लोग हाकी खेल कर लौट रहे थे और शोर सुनकर दौड़ पड़े थे। कोसी के ऊपर होनेवाले अत्याचार की बात सुनकर उनका खून खौल उठा। सदाचार और गरीब औरत के प्रति ऐसी अवहेलना और दुर्विचार रखनेवाले को अवश्य सजा देनी चाहिये ! कालेज के विद्यार्थियों का वह झुंड भी अहाता फाँद कर फुलवारी में चला गया और टार्च जला कर अपराधी की खोज करने लगा। मनोज उसी झाड़ी में दबका, थरथर काँपता और करुण दृष्टि से देखता हुआ पाया गया। उसके बाद जो उसे हाकीस्टिक से मार पड़ी उसके वर्णन की कोई आवश्यकता नहीं। वह आर्तस्वर में

चिल्लाता रहा, रोता, गिड़गिड़ाता रहा। बार-बार रोकर कहता था—अबकी जान छोड़िये; अब कभी ऐसा नहीं करूँगा। लेकिन यह सुनने की फुरसत किसे थी। वहाँ तो अपराधी को दण्ड देना था। मनोज को तब तक पीटा गया जब तक कि वह बेहोश नहीं हो गया। मार तो उसे और भी पड़ती, लेकिन किसी साथी ने कहा—अब बस करो यार, नहीं मर जायगा।

जब वे लोग अपराधी को पूरी सजा देकर गर्व से चहार-दीवारी पार करके चले तो एक ने कहा—चाहे जो कहो, लौन्डिया थी बड़ी अच्छी!

हसीन थी?

मत पूछो। आँख जैसे आम की फाँक थी।

मैंने तो देखा ही नहीं।

अरे वही जो सड़क के किनारे खड़ी थी। मैंने तो उसे अच्छी तरह देखा था।

एक तत्वज्ञानी विद्यार्थी ने कहा—उस बिचारे पर तो फजूल ही मार पड़ी। अगर उसकी जगह मैं होता तो अकेले में पाकर मैं भी शायद उसे पकड़ लेता।

गजब की आँख—जैसे अब बाली अब बोली।

लेकिन यार, यह एकान्त तो था नहीं जो उस साले ने पकड़ लिया। अब बचू के होश ठिकाने आ गये होंगे।

एक ने टिप्पणी जड़ी-कम्बख्त बेहूदा था। छेड़खानी करनी ही थी तो मौका देख कर करता। आनन फानन जाकर उसे पकड़ ही लिया।

इस पर सभी हँस पड़े।

उधर जब मनोज को होश हुआ तो उसे प्यास लगी थी। आसमान में तारे खिल खिला रहे थे। बड़ी बहारदार हवा बह रही थी। वहाँ कोई उसे पानी देने वाला नहीं था। पहले क्षण तो उसे मालूम हुआ जैसे वह उन्नाव के अस्पताल में ही पड़ा है। उसने पुकार कर पानी माँगा। फिर दूसरे ही क्षण जैसे उसने अपना अंग संचालन किया कि उसे अपनी स्थिति का पूरा ज्ञान हो गया। मार की चोट से तमाम शरीर में मर्मान्तक पीड़ा हो रही थी। ऐसी पीड़ा का अनुभव उसने अपने जीवन में कभी नहीं किया था। जरा-सा करवट बदलते ही मालूम होता था जैसे अब प्राण निकल जायँगे। वह रात भर वहीं पड़ा पड़ा जानवर की तरह कराहता रहा। उसकी आवाज में कैसी वेदना थी मानों उसके शरीर पर मृत्यु के दाँत गड़ रहे हों। वह अपनी प्यास को भूल गया। वह आँखें खोल कर चारों ओर देखता था और कराहता था। जरा-सी कुछ झपकी जैसे आ जाती थी फिर तुरत ही कराहता हुआ उठ जाता था। वह मरणोन्मुख कुत्ते की तरह रिरिया रहा था और जमीन में पैर रगड़ देता था। करवट बदलने की भी शक्ति उसमें नहीं थी।

दूसरे दिन वह किसी प्रकार खिसकता हुआ उस आहाते के बाहर निकला। नल पर भर पेट पानी पीने से उसकी तृप्ति हुई। वह वहीं बैठा रहा और सोचता रहा अपने दर्द को, अपनी पीड़ा को, अपने भाग्य को। अब उसे चिन्ता थी कि आगे कैसे चलेगा। उसने अपनी अंटी टटोली। वहाँ कुछ पैसे थे। मनोज को वे पैसे

कुबेर की अपार सम्पत्ति के समान मालूम हुए। वह इन पैसों को खर्च नहीं करना चाहता था। वह स्टेशन पर लौट कर जाना भी नहीं चाहता था। वहाँ उस पानवाले को अपना कौन-सा मुँह दिखलावेगा। कुली लोग तो घृणा और मखौल से उसकी जान ले लेंगे। उसके शरीर में उठने की भी शक्ति नहीं थी, खिसक कर किसी तरह कुष्टरोगी की भाँति अपने को घसीट सकता था और बीच-बीच में आर्तस्वर से वह कराह भी उठता था। मनोज ने अपने सामने से गुजरनेवाले लोगों की ओर देखा। बहुत से सुफेद पोस बाबू सड़क पर से गुजर रहे थे। किसीका भी ध्यान उसकी ओर नहीं था। इक्केवाले घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए आ और जा रहे थे। उनके घोड़ों के गले में बँधा हुआ घुँघरू प्रत्येक टाप के साथ बज रहा था। मनोज ने वहीं धरती पर अपना फटा और मैला अँगोछा बिछा दिया और हथेली फैला कर अपनी करुण आवाज में लोगों का ध्यान आकर्षित करके भीख माँगने लगा।

एक आदमी ने उसकी करुण दशा देख कर सलाह दी—तुम अस्पताल क्यों नहीं चले जाते ?

मगर मनोज को अस्पताल की बातें मालूम थीं। उसे सड़क के किनारे ही पड़े-पड़े मर जाना मंजूर था लेकिन अस्पताल जाना उसे किसी की शर्त पर मंजूर नहीं हो सकता था। बोला—गरीब-दुखिया पर अस्पताल में भी कोई ध्यान नहीं देते, सरकार !

मनोज बिना किसी मलहम-पट्टी के ही थोड़े दिनों में अच्छा हो गया ; लेकिन जबतक जीविका का कोई दूसरा अवलम्ब नहीं मिल जाता तब तक उसे भीख माँग कर ही गुजारा करना था।

यह भी एक अद्‌भुत काम है। इसके लिये दर्शक की [दया को अपनी ओर खींचना पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो भिखमंगा दर्शक की करुणा को जितना अधिक जागृत कर सकेगा उसे उतनी ही भीख मिलेगी।

मनोज ने इसका हल ढूँढ़ निकाला। चेहरे-मोहरे में उसे कोई परिवर्तन करना नहीं था। वह जानता था कि मेरा चेहरा जरूरत से भी ज्यादा खराब हो गया है; लेकिन फिर भी किसी भिखमंगे के लिये जवानी एक अक्षम्य अपराध है। जवान आदमी को भीख माँगते हुए देखकर सभी उसकी भर्त्सना करते हैं। उसने पैरों में गुड़ का लेप किया उसके बाद उन पर मैली पट्टी चढ़ा दी। अपने शरीर के कपड़ों में भी जहाँ तहाँ उसने गुड़ लगा दिया। इससे उसके तमाम शरीर पर बुरी तरह मक्खियाँ भिनभिनाती रहती थीं और वह मजे में लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकता था।

अपने बैठने के लिये उसने अपना स्थान हार्डिञ्ज पार्क के सामने का फुट पाथ चुना था। वहीं पर फाटक से जरा सटक वह बैठता था और किसी यात्री को देखते ही आर्तस्वर में चिल्ला कर कुछ माँगा करता था। उसके यहाँ पर बैठने में भी एक खास बात थी। जिस तरह दूसरे रोजगारों में प्रतियोगिता होती है उसी तरह भीख माँगने के काम में भी प्रतियोगिता होती है। मनोज इस कम्पेटीशन से बच कर अलग रहना चाहता था। हार्डिञ्ज पार्क की ओर कोई भी भिगमंगा नहीं बैठता था। इसके अलावा वह एक चलती हुई सड़क थी। हाइकोर्ट के ऐडभोकेट और मुकदमेबाज उधर से गुजरते थे, सेक्रेटेरियेट के कर्मचारी आया-जाया करते थे। वहाँ बैठ कर

वह रोजाना आठ आने से लेकर एक रुपया तक कमा लेता था। रात को वह उठ कर पाइप में स्नान करता और कुछ अच्छे कपड़े पहनता। फटी-पुरानी कथरी को उसी हार्डिञ्ज पार्क की किसी झाड़ी में छिपा देता था। रात के समय वह इधर-उधर खूब घूमता। मीठापुर के एक होटल में जाकर भर पेट भोजन करता था। धीरे-धीरे उसके पास कुछ पैसे भी जमा हो रहे थे। तीन-चार महीने के अन्दर ही उसके पास सौ रुपयों से अधिक जमा हो गये। पास में पैसा होने के कारण उसे एक प्रकार की आत्म तुष्टि रहती थी। मन प्रसन्न रहता था। शरीर भी धीरे-धीरे मोटा हुआ जा रहा था। अब वह माँगने में प्रायः आलस्य भी कर देता था।

एक दिन उसने वहीं बैठे-बैठे कोसी को देखा। वह अपने बाप की लाठी पकड़े आगे-आगे जा रही थी। वह पहले की अपेक्षा चंचल प्रतीत होती थी। शरीर कुछ दुबला हो गया था मगर चेहरे की कान्ति बढ़ गई थी। आज वह पहले से बहुत ही आकर्षक मालूम हो रही थी। उसे देखकर मनोज के शरीर के रगों में गर्म खून जोर-जोर से दौड़ने लगा, कलेजा धड़क उठा। जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गई तब तक वह उसे देखता रहा। बड़ी देर तक मनोज इस बात की आशा में पड़ा रहा कि वह इसी रास्ते से लौटेगी, लेकिन नहीं लौटी। शायद किसी दूसरी सड़क से चली गई होगी। मनोज को होता था कि उसने मुझे देखा है, फिर होता था कि नहीं देखा है। देखने जैसा कोई भाव तो मिला ही नहीं। इस तरह आगे बढ़ गई मानों उसने देखा

भी नहीं, पहचाना भी नहीं। लेकिन यह भी एक अचम्भे की बात है कि भिखमंगों की जमात का कोई आदमी किसी दूसरे भिखमंगे को देखे और उस पर ध्यान न दे।

दूसरे दिन कोसी फिर उस रास्ते से गुजरी। आज मालूम हुआ जैसे उसने मनोज को देखा है। वह जरा रुकी; ठिठक कर मनोज को देखा और आगे बढ़ गई। न उसने कुछ पूछा और न मनोज ने कुछ कहा। उसके चले जाने के बाद वह बराबर यही सोचता रह गया कि कोसी ने उसे देखकर क्या सोचा होगा। उसे अपने भिखमंगेपन की कोई लाज नहीं थी। वह भिखमंगा होकर पहले की अपेक्षा काफी कमा लेता था। कुछ पैसे भी इकट्ठे हो गये थे और वह भी तो किसी भिखमंगे की ही बेटी है। तो क्या उसने भी मुझे औरों की तरह गलित कुष्ट का रोगी समझ लिया होगा? ऊँहूँ, यह असम्भव है। क्या वह भिखमंगों के हथकंडे नहीं जानती होगी? जरूर जानती होगी। इसी तरह मनोज और भी जाने क्या क्या सोचता रहा।

तीसरे दिन फिर कोसी उधर निकली। वह चुपचाप सीधी चली गई। मनोज को वह जता देना चाहती थी कि वह न उसे याद करती है और न परवा करती है। चौथे दिन वह उसकी ओर सिर्फ देखती गई। जैसे वह चाहती थी कि मनोज कुछ बोले तो मैं भी बोलूँ। लेकिन न मनोज ही कुछ बोला और न वही बोली। पाँचवे दिन वह वहाँ रुक कर खड़ी हो गई और मनोज से पूछा—तुम यहीं बैठते हो जी?

मनोज जैसे कृतकृत्य हो उठा। उसका कण्ठ गद्गद् हो गया।

उसने सिर हिलाया और जल्दी से किसी तरह गले को साफ करके बोला—हाँ।

यहाँ कैसा कमाते हो?

मनोज ने प्रसन्नचित्त जवाब दिया—अच्छा कमा लेता हूँ।

कितना पड़ता होगा?

यही एक-सवा पड़ जाता है। यहाँ बड़ा अच्छा है।

अच्छा जी, यहाँ पुलिसवाले कुछ बोलते नहीं?

अरे वे डाकू हैं, डाकू। चार आने रोजाना उनको पुजाई देनी पड़ती है। जमादार मुझपर दया करता है, दारोगा ध्यान नहीं देता। इन्सपेक्टर को देखता हूँ तो छिप जाता हूँ।

कोसी ने हँसकर कहा—तुम हो बड़े होशियार!

और वह वहाँ से चली गई।

उस दिन मनोज कितना प्रसन्न था मानों संसार की सारी सम्पत्ति उसे मिल गई हो। तुम हो बड़े होशियार! यह वाक्य बार-बार उसके हृदय में वीणा की झंकार की भाँति बज रही थी। यह कोसी की अपनी रुचि थी। उसने मनोज को पसन्द किया था, उसे होशियार कहा था!



८

दूसरे दिन मनोज ने आशा की थी कि कोसी इधर अवश्य आवेगी; लेकिन उसकी आशा केवल आशा ही रह गई। कोसी नहीं आई। वह दिनभर व्याकुलता से उसकी राह देखता रह गया, मगर कोसी का कहीं पता नहीं था। कल वह जितना प्रसन्न था, आज उतना ही उदास था। उसे समय पहाड़ मालूम होता था जो काटे किसी तरह नहीं कटता था। रात को खाने-पीने के बाद वह व्यर्थ ही इधर-उधर घूमता रहा। वह दुखी और परीशान था। कोसी को प्राप्त करना ही उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य हो रहा था। अब तो उसके पास एक सौ से भी अधिक रुपये थे। वह अमीर आदमी था।

मगर दूसरा दिन भी बीत गया और कोसी के दर्शन नहीं हुए। तीसरा, चौथा, पाँचवा-कितने दिन बीत गये। सप्ताह पार हुआ और महीने भी गुजर चले, लेकिन कोसी उधर से नहीं आई। मनोज का दुख धीरे-धीरे कम हो गया था। अधीर प्रतीक्षा भी मिट रही थी और वह अपने को इधर-उधर की बातों में भुलाने का प्रयत्न करता था। कभी-कभी उसे आश्चर्य होता था कि एक दिन इतनी दिलचस्पी दिखला कर उसी तरह एकाएक वह गायब कैसे हो गई! इसीसे कहा गया है कि औरतों का भेद कोई नहीं जान सकता। फिर वह सोचता था कि वह एक उड़ती चिड़िया है, किसी डाली पर

जा वैठी होगी। उसमें भला आकर्षण ही क्या था। इस विचार के द्वारा वह अपने को तसल्ली देना चाहता था। यद्यपि उसे कोई खास तसल्ली नहीं मिलती थी। असल चीज तो था समय जो उन दोनों के बीच में व्यवधान डाल रहा था। कोसी को वह अब अजीब तरह से ख्याल करता था। वह किस तरह उसे याद करता यह शायद वह खुद भी नहीं बता सकता होगा।

आजकल उसकी आमदनी घट रही थी और भीख माँगने में उसका मन कम लगता था। इन दिनों वह अपने गले से वैसी करुणोत्पादक आवाज नहीं निकाल सकता था। इसका कारण था कि उसके पास कुछ पैसे हो गये थे और उसके दिल में कोसी के कारण एक बेचैनी भरी कटुता भर गई थी। इसके साथ-साथ एक दूसरा कारण भी था जिसपर मनोज ने कम ध्यान दिया था। अनुभवी भिखमंगा ही इसका कारण बतला सकता था। वह बतलाता कि किसी भी भिखारी को, चाहे वह कैसा भी हो, एक ही स्थान पर नहीं बैठना चाहिये। एक सड़क पर प्रायः एक ही प्रकार के लोग चला करते हैं। वे रोज-रोज उस भिखमंगे को देखते हैं, उसकी सदा वैसी ही करुणाजनक स्थिति देखते हैं और कोई आकर्षण नहीं बच जाता। हाँ, यदि किसी मंदिर की सीढ़ियों के पास या ऐसी जगह बैठना हो जहाँ दूर-दूर के यात्री और बहुधा स्त्रियाँ आती हैं तब तो बात दूसरी है। स्त्रियाँ प्रायः एक ही भिखमंगे को रोज भीख दे सकती हैं। इस तरह रोज भीख देकर वे उसकी जाँच उसी भाँति करती हैं जैसे कोई बालक रोज पानी सींच कर गौर से देखता है कि इसका कुछ असर हो रहा है या नहीं। पुरुषों की

प्रकृति इससे बिल्कुल विभिन्न होती है। वे रोज एक ही भिखमंगे को देखते और देते हुए ऊब जाते हैं। कभी-कभी दुत्कार भी देते हैं। इसीलिये बीच-बीच में भिखारी को कुछ दिनों में अक्सर जगह बदलते रहना चाहिये। इससे आमदनी कभी घटती नहीं। यों अगर संयोग ने साथ न दिया तो बात दूसरी है। सचमुच मनोज के गले में यह एक प्रकार की नई चिन्ता आकर लिपट गई थी। उसकी दिन भर की आमदनी अब दो आने, दस पैसे से अधिक नहीं थी। इस तरह तो काम नहीं चल सकता। कोई दूसरा उपाय करना पड़ेगा। कभी-कभी वह सोचता था कि जो कुछ पास में है उससे कोई-कोई चीज खरीद कर फेरी के लिये निकले; लेकिन वह परिश्रम का काम था। नई बात थी। मनोज हिचक जाता। भीख माँगना उसे बड़ा आसान काम लगता था और वह इस काम को छोड़ना नहीं चाहता था।

स्थान बदलने की बात तो उसकी समझ में आई नहीं; लेकिन उसने चाहा कि वह अपने इस काम से कुछ दिनों के लिये अवकाश ग्रहण कर ले। इस बात के अगोचर में भी एक बात थी जिसे वह अपने आप से छिपा लेना चाहता था। इस अवकाश के बहाने वह इधर-उधर घूमना और कोसी का पता लगाना चाहता था। उसने एक धोती और एक हाफ कमीज खरीदी और उसे पहन कर वह शहर में इधर-उधर मटर गश्ती करने लगा। दूर पर चाहे किसी भी औरत को देखता कि उसके मन में फौरन आ जाता कि कहीं यह कोसी तो नहीं है। निकट पहुँचने पर उसका भ्रम दूर हो जाता। इस तरह उसने पहली बार सारे पटने की

परिक्रमा की। सड़क-मैदान, गली-कूचे, राई-रत्ती चारों ओर छान मारा, मगर कोसी कहीं दिखलाई नहीं पड़ी। फिर भी वह उदास नहीं था। वह नई-नई चीज़ों को देखता था, नये लोग उसकी आँखों के सामने आते थे। इससे उसके मन में सदा नई-नई बात आती रहती। रात को फुटपाथ पर सो जाता। लॉन में पहुँच कर अगर सो सकता तब तो कोई बात ही नहीं थी। अब वह अपने को एक अच्छा आदमी समझता था और इस तरह बेमतलब उधर-उधर घूमने में उसका मन लगता था।

एक दिन दोपहर को उसने कोसी को नयाटोला की एक गली में देखा। कोसी एक गेरुआ साड़ी पहने हुई थी और बड़ी अच्छी लग रही थी। वह गेरुआ साड़ी उसके शरीर में शोभा देती थी। बदन बिखरा हुआ था। यौवन की पँखुरियाँ खिल रही थीं। वह सड़क पर एक दरवाजे के सामने खड़ी होकर गा रही थी।

रहना नहिं देस बिराना है!

मनोज ठिठक गया। जरा दूर कुछ ओट में खड़ा होकर कोसी को देखने लगा। उसका हृदय उछला-उछला पड़ता था। कोसी के गीत में एक अपूर्व माधुरी मिल रही थी। वह चुपचाप खड़ा उस मिठास का अनुभव कर रहा था। उसके होठों में एक मुस्कान आकर स्थिर हो गई थी। कोसी यद्यपि अच्छा गाती नहीं थी फिर भी उसका गला मीठा था। मनोज के हृदय में मानों रस का स्रोत उमड़ने लगा। वह गा रही थी—

यह संसार कागद की पुड़िया बून्द पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटे की बाड़ी उलझ-उलझ मरि जाना है॥

कोसी जिस दरवाजे के सामने खड़ी होकर गा रही थी वह एक पुराना और छोटा-सा घर था। दरवाजे पर एक चौकी रखी हुई थी। बाहर कोई नहीं था। अन्दर जाने का द्वार भीतर से बन्द था। कोसी बार-बार अपनी टेक दुहराती रही, लेकिन न द्वार खुला और न कोई आया। कोसी जरा आगे बढ़ी और दूसरे दरवाजे के सामने आगे का पद गाने लगी :—

यह संसार झाड़ औ झाँखर आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है॥

मनोज का ध्यान जब उस गीत के अर्थ की ओर गया तो वह और भी अधिक प्रभावित हुआ। सचमुच दुनिया परदेस ही तो है। यहाँ अपना कौन है। संसार में सब जगह तकलीफ भरी हुई है। आराम कहाँ? इसी से लोग सब कुछ त्याग कर साधु हो जाते हैं। जंगल में धुनी जलाते हैं और आराम से रहते हैं।

मगर उसकी सारी फिलासफी तुरत ही खाक में मिल गई और उसे क्रोध चढ़ आया। उसने देखा कि उस घर का दरवाजा खोलकर एक बीस-बाइस वर्ष का छोकरा निकला और कोसी को देखकर ठप से अपना एक आँख टीप दिया। मनोज जल उठा। उसका खून खौलने लगा। मगर उसे आश्चर्य तो तब हुआ जब कोसी ने उस कनखी का कोई प्रतिवाद नहीं किया। अगर वह नहीं समझती तब तो कोई बात ही नहीं थी; लेकिन कोसी तो बदले में मुसकिराई। कोसी, तू ऐसी कब से हो गई?

कोसी की मुसकिराहट ने उस छोकरे को चाहे जितना तृप्त किया हो, मगर मनोज के दिल में तो वह बर्छी की तरह आरपार

हो गई। उसने चाहा कि आगे बढ़कर उस लड़के को सजा दें, मगर फिर दुबारे दरवाजा खुलता देख ठिठक गया। अबकी दरवाजा खोल कर एक दूसरा छोकरा बाहर आया। वह भी उसी उम्र का था। दोनों की पोशाक भी अच्छी थी। आनेवाले ने कहा—देखती क्या है; चली आओ न। आज घर पर कोई नहीं है।

कोसी ने हँसते हुए कहा—पैसा दो तो आवें!

कितना लेगी?—पहले ने पूछा।

दूसरे ने केहुनी से जरा धक्का देकर कहा—चार आना देंगे। हमलोग दो ही आदमी हैं। आओ।

वह चौकन्ना-सा इधर-उधर आँखें फेंक कर जाँच रहा था कि कोई देख तो नहीं रहा है। मनोज जरा ओट में था और वह बड़ी जल्दी में था, इसी लिये उसे देख नहीं सका। मगर कोसी को इसकी तनिक भी परवा नहीं थी। उसने किसी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जरा और भी जोर से हँसकर बोली—नहीं, पहले मुझे दे दो।

पहले ने जेब से चवन्नी निकाली और उसे दिखलाता हुआ बुलाया—आओ, जल्दी आओ नहीं तो कोई देख लगा।

कोसी वहीं पर खड़ी-खड़ी उसी तरह हँसती हुई बोली—देना हो तो दे दो! मैं अभी नहीं आऊँगी, कहो तो पीछे आऊँगी!

उसने फिर चवन्नी दिखलाई और मुसकिरा कर कहा—पीछे नहीं; आओ!

कोसी ने जोर से अस्वीकारात्मक सिर हिलाया, उसकी ओर देखा, हँसी और आगे के लिये चल खड़ी हुई।

दूसरे ने पुकारा—अरे सुनो तो !

कोसी ठिठक कर उसकी ओर देखने लगी ।

पहले ने कहा—हम तुम्हारा विश्वास करते हैं। तुम जरूर आना ।

कोसी ने हथेली पसार कर कहा—तो लाओ पैसा ।

पैसा उसी वक्त लेना।

नहीं, मैं अभी लूँगी।

अगर नहीं दें तो ?

तो नहीं आऊंगी।

दूसरे ने कहा—तुम्हारा कौन विश्वास !

कोसी आगे बढ़ कर बोली—तो तुम्हारा कौन विश्वास !

जिसके हाथ में चवन्नी थी उसने कहा—अरे नहीं-नहीं तुम आना !

और उसने चवन्नी सड़क पर फेंक दी। कोसी ने उसे मुसकिरा कर उठा लिया और आगे जाने लगी ।

वह कुछ ही दूर आगे गई होगी कि मनोज ने उसे पुकारा—कोसी ! कोसी रुक गई और उसकी ओर देखने लगी। मनोज को देखकर वह प्रसन्न हो उठी थी; लेकिन आशा के विपरीत मनोज ने जलती हुई आवाज में पूछा—यह क्या होता है ?

'क्या ? कुछ तो नहीं !'—कोसी सकपका कर बोली ।

मनोज और भी आगे बढ़ कर बोला—उनलोगों से क्या बातचीत हो रही थी ?

कुछ तो नहीं !—कोसी ने फिर ज़वाब दिया ।

मनोज ने तप्त कण्ठ से कहा—मैंने सब देखा है, सब सुना है। उन बदमाशों ने तुम्हें चवन्नी दी और पीछे आने को कहा। क्या यह झूठ है ? उनलोगों ने तुम्हें चवन्नी नहीं दी ?

कोसी ने कहा—ऐसा तो सभी लोग करते हैं। मेरे पास एक चवन्नी और दो दुअन्नी और भी है। सब बदमाश हैं, सब बुलाते हैं। मैं पैसे ले लेती हूँ मगर कहीं जाती नहीं। सबको छका देती हूँ।

यह कह कर मनोज की अबोधता पर बड़े जोर से खिलखिला कर हँस उठी।

कुछ ठहर कर बोली—ऐसा न करूँ तो पाऊँ कैसे; लोग देते ही कहाँ हैं। देख लो न, झोली तुम्हारे सामने है। अबतक तीन ही मुट्ठो चावल मिला है। इससे क्या होगा ?

मनोज की आँखों के आगे से पर्दा हट गया। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया। बोला—अगर कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?

क्या कहेगा ?—कोसी ने भी सवाल किया।

कहेगा कि तुम ऐसा करती हो।

कोसी ने चिढ़ कर जवाब दिया—अगर मैं ऐसा करूँ तो भी कोई मेरा क्या करेगा। विपत्ति को तुम नहीं जानते होगे, वह तो ऐसा ही करती है। उसे कौन क्या कहने आता है। मैं तो सबको छका देती हूँ। अब इस मुहल्ले में महीनों नहीं आऊँगी।

मनोज आहत होकर बोला—अच्छा, मान लो, अगर तुम्हारे बाबा जानेंगे तो क्या कहेंगे ?

कोसी ने कहा—बाबा अब नहीं हैं। वे मर गए।

मनोज के दिल को एक धक्का-सा लगा। आश्चर्य और दुख से चोट खाया-सा बोला—मर गये! कब मरे?

'दो महीने हो गये!' कोसी ने कहा—कोई बात नहीं. कोई बीमारी नहीं। एक दिन रात को लौटे तो बोले मेरा जी खराब है। दूसरे ही दिन मर गये।

कोसी की आँखें भींग गईं। उसने तुरत आँचल से आँसू पोंछ लिया। मनोज ने पूछा—घर में तुम अब अकेली ही रहती होगी?

कोसी ने कहा—मेरी एक मौसी है, सो आ गई है। वह दिहात के बाजारों में घूम-घूम कर तरकारी बेचती है। उसे मेरा भीख माँगने देना पसन्द नहीं है। कहती है कि वह मुझे दिहात में ले जायगी और शादी कर देगी।

शादी के नाम से ही मनोज का जी कैसा हो आया। उसने स्निग्ध कण्ठ से कहा—मुझसे शादी करोगी, कोसी? मैं रानी बनाकर रखूँगा। तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होने दूँगा।

कोसी बिना किसी लाज या झिझक के बोली—सो मैं अपने मन से कैसे कर सकती हूँ। तुम मौसी से पूछो, वही कहेगी।

मनोज ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—तुम अपनी मौसी से कहो कि तुम मुझसे ही व्याह करोगी।

कोसी ने हँस कर अपना हाथ छुड़ा लिया और बोली—मैं अपने मन की तो नहीं हूँ। मेरी मौसी मुझे बेचेगी। जो मुझे खरीदेगा वही मुझसे शादी करेगा।

मनोज चौकन्ना होकर बोला—वह तुम्हें बेचेगी! ऐसा क्यों? यह कहाँ का दस्तूर है?

कोसी ने कहा— वह बेचेगी नहीं तो क्या करेगी। वह गरीब जो है। मुझे बेचकर कुछ पैसा कर सकेगी।

मनोज ने आश्चर्य से पूछा—और जिसके हाथ वह बेचेगी उसीके साथ तुम चली जाओगी?

कोसी ने दृढ़कण्ठ से जवाब दिया—क्यों नहीं जाऊँगी; जरूर जाऊँगी।

मनोज ने कहा—और अगर मैं ही तुम्हें दाम देकर खरीद लूँ?

कोसी ने हँसते हुए कहा—तो तुम्हारे साथ ही चली जाऊँगी।

मनोज ने फिर पूछा—मौसी तुम्हारा कितना दाम माँगती है?

कोसी—एक सौ!

मनोज ने कहा—तो तुम अभी मेरे साथ अपनी मौसी के पास चलो। मैं आज ही तुम्हें खरीद लूँगा।

कोसी की मौसी जवानी से चल कर काफी दूर पहुँच गई थी। सिर के केश श्वेत हो रहे थे। वह काफी चालाक मालूम होती थी। जब कोसी उसके सामने पहुंची तो उसने बड़े स्नेह से उसका स्वागत किया। मनोज के बारे में पूछा—यह कौन है? बोलते समय उस औरत के सिर हिलते थे, हाथ हिलाने की भी उसकी आदत थी। मनोज का मन्तव्य सुन कर उसने कहना आरम्भ किया कि भला अपना कलेजा निकाल कर भी कोई बेचता है; लेकिन आदमी की गरीबी जो न करावे, वही थोड़ा है। यही बात है कि मैं कोसी को बेचना चाहती हूँ। बहुत से लोग तो सवा सौ देने को भी राजी थे; लेकिन मैं ने कहा नहीं, कोई मेरी पसन्द के लायक हो। तुम से सौ ही लूँगी। गरीब औरत हूँ; मैं

अपनी लड़की दूँगी और आशीर्वाद दूँगी। इसके सिवा मेरे पास और है ही क्या।

मनोज उसकी बातचीत सुनकर मुग्ध हो गया। उसने उसी समय वहाँ पर दस-दस के दस नोट रख दिये और कहा—कोसी को मैं आज ही ले जाऊँगा।

मौसी उसका परिचय प्राप्त कर चुकी थी। बोली—कुछ कपड़े खरीद लाओ और रहने का कोई घर ठीक कर लो। मैं आज ही चलकर ठाकुरवाडी में तुम्हें सौंप देती हूँ।

मनोज दौड़ा-दौड़ा तुरत बाजार गया और तीन साड़ियाँ खरीद लाया। एक मौसी के लिये और दो कोसी के लिये। आज उसकी खुशी का अन्त नहीं था। आज उसके पाँव जमीन में नहीं पड़ते थे। अपने लिये धोती-कुर्ता और कोसी के लिये एक बढ़िया-सा जैकेट लाना भी वह नहीं भूला था। तीनों आदमी गंगा नहाने गये। वहाँ से नये कपड़े पहिन कर लौटे। मौसी उन्हें भीखम दास बाबा की ठाकुरवाड़ी में ले गई। उस ठाकुरबाड़ी की आँगन में कोसी का हाथ मनोज के हाथ से पकड़ा दिया। बस यही विवाह की क्रिया थी जो सानन्द समाप्त हो गई। न बाजा-गाजा, न नाच-निमंत्रण, और विवाह का कार्य सम्पूर्ण हो गया। दोनों वर-वधू ने पहले ठाकुर जी को प्रणाम किया उसके बाद मौसी को। मौसी अपने साथ सिन्दूर की एक पुड़िया लेती आई थी। उसे मनोज के हाथ में देकर बोली—यह सिन्दूर चाहो तो अभी लगा दो, चाहे पीछे लगा देना।

मनोज ने सिन्दूर की पुड़िया अपने हाथ में ले ली और

६

कोसी की मौसी के सिर पर काली घटा की भाँति उमड़ता हुआ बुढ़ापा आ रहा था। वह गरीब और दूरदर्शी औरत थी। भविष्य की चिन्ता सदा उसके समीप मड़राती रहती थी। जब उसके सिर के केश सन से बिल्कुल सुफेद हो जायँगे, आँखों से कम सुझाई देगा, कान से कम सुनाई देगा, चलने की शक्ति नहीं रहेगी, हाथ-पाँव सदा काँपते रहेंगे—उस समय उसे कौन काम देगा? अपना तो उसका कोई नहीं। और सच पूछिये तो अपना-पराया जो कुछ है वह पैसा है। यदि पास में पैसा है तो सारी दुनिया अपनी है और पैसा पास नहीं तो अपने भी पराये हैं। बुढ़िया ने जमाना देखा था। वह पैसे के महत्त्व को जानती थी और अपने आनेवाले अगोचर दुर्भाग्य को भी जानती थी। वह गया जिले के एक गाँव में रहती थी। वहाँ वह कोइरी लोगों से सब्जी खरीदती और कुछ ऊँचे दर पर उसे बाजार में लेकर बेंच आती थी। इसी तरह उसका पेट चलता था; लेकिन वह सोचा करती थी कि आगे कैसे चलेगा? इसी समय उसे अपने बहन के पति के मरने की खबर मिली। वह दौड़ी-दौड़ी जाकर कोसी से मिली। उसे देखकर उसका मातृस्नेह उमड़ आया। वह उसे अपनी लड़की से भी बढ़कर प्यार करने लगी। अपना हृदय खोलकर उसके अन्दर कोसी को ले लिया। कोसी भी बुरी लड़की नहीं थी। मौसी जो उसे इतना प्यार करती थी

इसका बदला देना उसका फर्ज था। मौसी ने उसे जताया था बेटी, अब तो तेरा मेरे सिवा और कोई नहीं और मुझे तो तेरे सिवा न कोई है और न रहेगा। तू ससुराल जायगी और मेरा बुढ़ापा काँटों की शय्या बन जायगा। मरते समय भी कोई सुख न मिलेगा। इस तरह उसने कोसी को अपनाकर इस बात के लिये राजी कर लिया था कि उसे दान करने के बदले में जो रुपये उसके पति की ओर से मिलेंगे वह उसके बुढ़ापे का एक जबरदस्त सहारा होगा। कोसी को भी होता था कि वह अपनी अभागिन मौसी के किसी काम तो आयेगी। उसके बाद एकाएक कोसी की शादी हो गई। एक लूला आदमी आया और तुरत दस-दस के कई नोट उसने गिन दिये। इस तरह एकाएक एक सौ रुपया पा जाने पर कोसी की मौसी के हृदय में द्वंद्व मच गया। एक साथ इतने अधिक रुपयों को अपना समझने का मौका उसे जीवन पर्यन्त कभी नहीं मिला था। पर जब कोसी के कारण उसे अनायास ही उतने रुपये मिल गये तो उसका मन बदल गया। उसे मालूम होने लगा कि मानों ये रुपये कम हैं। इतने कम से तो उसका बुढ़ापा नहीं बीतेगा। बुढ़ापे में आदमी बीमारियों से घिरा होता है। बीमारी के लिये दवा की अत्यन्त छोटी-छोटी गोलियों के भी कम दाम नहीं लगते। घर में उसकी सेवा-सँभाल करने वाला कोई होना ही चाहिये। उसके कपड़े-लत्ते और खाने-पीने का खर्च अपने ही सिर पर बीतेगा। तमाम जिन्दगी तो दुख काट आई; जरा बुढ़ापा भी तो सुख से बीते। उसने कोसी से अपना मन्तव्य प्रकट किया कि अगर तुम मेरे साथ देहात चली-चलो तो मैं और भी कुछ कमा सकती हूँ। जरा कोसी

का माथा ठनका कि आज ही तो उसकी शादी हुई है फिर देहात चलने की बात ! उसने सोचकर जो समझा उसे ठीक-ठीक नहीं समझना चाहा, क्योंकि वह अपनी मौसी को बहुत ज्यादा मानती थी। उसकी मर्जी में दखल देना नहीं चाहती थी । फिर भी वह चाहती थी कि जरा मनोज आ जाय तो उससे कह कर जायँ । उधर मौसी माननेवाली नहीं थी। वह जानती थी कि मनोज आवेगा तो बखेड़ा खड़ा करेगा। जाने नहीं देगा। उसने कहा—नहीं, नहीं, अभी ही चली चलो; दस-पन्द्रह दिन की तो बात है , उसके बाद फिर यहाँ आना ही है।

कोसी बड़े असमंजस के साथ जाने को तैयार हो गई। भीतरी जी उसका जाने का न था ; लेकिन मौसी के आग्रह को टालना भी कठिन था। बुढ़िया जबतक चीजों को सहेजती और बाँधती रही तबतक वह बड़ी उतावली से मनोज की राह देखती रही कि अभी भी तो आ जाय। मनोज तो उधर किराये का घर लेने में मस्त था। वह आया नहीं और कोसी अपनी मौसी के साथ चली गई। मौसी से उसने स्पष्ट ही कह दिया था कि जब एक आदमी से विवाह हो ही गया तो फिर दूसरे के यहाँ नहीं जाऊँगी। बुढ़िया ने उसे समझाया, सो तुम्हारी खुशी है, चाहे जहाँ रहना। मुझे तो पैसों से मतलब है जो बुढ़ापे में मुझे काम देंगे। तुम्हारी खुशी होगी तो तुम थोड़े ही दिनों में यहाँ चली आवोगी । जो मुझे रुपया देगा उससे कह दूँगी कि लड़की ही भाग गई तो मैं क्या करूँ ।

जब दोनों रेलगाड़ी पर बैठीं तो कोसी ने कहा—लेकिन मैं अब किसी दूसरे के यहाँ नहीं जाऊँगी।

बुढ़िया हँसकर बोली—तुम्हें जाने को कहता कौन है? इसी तरह कोई रुपया दे जायगा और इसी तरह उस दिन तू यहाँ लौट आना।

मौसी इस घोर यथार्थ को जानती थी कि इतनी आसानी से कोसी वहाँ से छुटकारा नहीं पा सकेगी, मगर इस सत्य को उसने छिपा लिया। उसने मनोज के प्रति कोसी का कोई आकर्षण देखा नहीं था, अपने प्रति सद्भावनायें अवश्य देखी थीं। उसने तय कर लिया था कि कोई कठिन प्रसंग आ जायगा तो भी कोसी मेरी बात उसी तरह मान जायगी जिस तरह आज मान गई। मेरे सिवा उसका और है कौन?

कोसी के मन में देहात में रहने की प्रबल लालसा थी; लेकिन वह लालसा शीघ्र ही मिट गई। वहां उसे एक अजब सूना-सा मालूम होता था। अपनेपन का भाव कहीं भी नहीं मिलता था। जिस तरह की बातें सुनने की वह आदी हो गई थी, जिस वातावरण में वह सदा रह आई थी यहाँ उसकी गन्ध भी नहीं मिलती थी। स्त्रियाँ बड़े मोटे-मोटे गहने पहनती थीं और एक दूसरे से बहुत ईर्ष्या करती थीं। छोटी-छोटी बातों को लेकर खूब गाली-गुफ्ता करती थीं। बात को वे लोग इस ढंग से बोलती थीं जो कोसी को पसन्द नहीं आता था। सबसे बड़ी बात कि कोई उसके मेल के लायक औरत नहीं मिलती थी जिससे वह मिल-बोल कर दिल बहला सके। इसके अलावा शहर की चहल-पहल भी वहाँ नहीं थी, भीख माँगने का काम भी नहीं था। कोसी को वहाँ ऐसा मालूम होता था जैसे वह कैदखाने में पड़ गई हो। मौसी उसे कभी अपनी आँखों के ओट नहीं करती।

जहाँ कहीं कोसी जाती वह भी उसके साथ-साथ जाती। खास करके किसीसे मिलने-बोलने के समय तो वह और भी सतर्क रहती थी। डर लगता था कि कहीं कोई कोसी को सतर्क न कर दे, कोई बहका न दे। कोसी यहाँ आकर यह भी स्पष्ट अनुभव करती थी कि मौसी उसका आदर पहले से कहीं अधिक करती है। धीरे-धीरे वह इस आदर से भी ऊब गई और एक दिन उसने कहा—मौसी, मुझे जाने दो। यहाँ जरा भी अच्छा नहीं लगता।

मौसी ने विनती करके कहा—मैं जानती हूँ कि तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लगता होगा; लेकिन तेरी थोड़ी-सी तकलीफ से ही मेरा बुढ़ापा बन जायगा।

मौसी ने चारों ओर यह बात फैला रखी थी कि कोई आदमी मिले तो उसके हाथ कोसी को सौंप दूँगी। इस पर कुछ आदमी मिले भी। उनमें एक बूढ़ा अहीर था जो गर्मी के दिन में भी ऊनी दुशाला ओढ़कर कोसी को देखने आया था। दूसरा एक काना कान्दू था जो आकर अपनी एक ही आँख से बड़ी देर तक कोसी को घूरता रहा। यहाँ तक कि कोसी अनखाकर वहाँ से चली गई। वे लोग भी देखकर जा गये सो लौटे नहीं। आजकल की मन्दी के जमाने में सौ-डेढ़ सौ का सौदा बड़ा मँहगा पड़ता था।

मौसी ने दस पन्द्रह दिनों में ही लौटा देने का वादा किया था, मगर यहाँ तो पूरा महीना बीत गया। कोसी को अब तनिक भी अच्छा नहीं लगता था। वह वहाँ से जाना चाहती थी। उसके मन में होता था कि वह शहर में जाकर मनोज से मिलेगी। दोनों

मिलकर अपनी घर-गृहस्थी बसायेंगे। यहाँ तो कुछ भी नहीं है। मौसी उससे जितना ही अपनापन जताती उतना ही कोसी का मन उचटा जाता था। यदि जल्दी मौसी का स्वार्थ पूरा हो जाता तो उसे कोई आपत्ति नहीं होती; लेकिन यहाँ तो धैर्य की विकट परीक्षा थी। आसार ऐसे नजर आ रहे थे कि इस साल कोसी को लेनेवाला कोई नहीं मिलेगा। मौसी बड़ी शान्ति के साथ इसका फैसला सुनाती कि क्या हर्ज है, अगले साल ही सही। मगर वह कोसी को शहर में जाने देना पसन्द नहीं करती थी। ऐसा वह पसन्द करती ही कैसे; जवान लड़कियाँ जहाँ अपने पति के पास गईं कि सब भूल गईं। इस तथ्य को जानकर भी भला कोई अनुभवी औरत कोसी को शहर में जाने देना कैसे मंजूर कर सकती थी। धीरे-धीरे उसने समझाने-बुझाने का ढंग भी बदल दिया था। मौसी की बातों से मालूम होता मानों कोसी के लिये संसार में उसके सिवा और कोई है ही नहीं। इसके अलावा यह कोसी का कर्तव्य है कि जिस तरह मौसी उसे रखेगी उसी तरह उसे रहना चाहिये, जैसा वह चलावे वैसा ही चलना चाहिये। यही धर्म है। आजकल लोग धर्म मानते नहीं इसीलिये तो दुनिया रसातल में जा रही है!

कोसी को यह अच्छा नहीं लगता। वह जानती थी कि मौसी की छत्रछाया की उसे कोई जरूरत नहीं है। वह अपनी मौसी से लड़ना चाहती थी, मगर झगड़ा करने का उसे कोई मौका ही नहीं मिलता था। कभी उसकी मौसी अपनी बातों पर नैतिकता का ऐसा रंग चढ़ाती और कभी दुनियादारी की अनुभव-पूर्ण ऐसी बातें करती कि कोसी को कुछ कहते नहीं बनता था। फिर भी वह खुश नहीं थी

और उसका मन सदा भाग चलने को आतुर रहता था। यहाँ काम भी उसे बहुत करने पड़ते थे। चार बजे तड़के ही उठ कर गोबर चुनने जाना पड़ता था। उधर से लौट कर आती तो उपला पाथते-पाथते अबेर हो जाती। खाने-पीने के बाद उसे जाँते पर सत्तू पीसना पड़ता था। इतना परिश्रम उसने अपने जीवन में कभी नहीं किया था। सदा वह शहरों में रह आई थी। भीख मांग कर खाने में किसी प्रकार की भी शर्म हो सकती है इसका उसे कोई अनुमान नहीं था। भीख के जरिये किस तरह कितनी आसानी से पैसे मिल जाते हैं यह जान कर भी जो मिहनत के पीछे तन तोड़ता रहे उसे मूर्ख छोड़ कर और क्या कहा जाय?

कोसी झुँझला कर कह उठती—राम रे, इस मौसी के पीछे तो मैं मर ही जाऊँगी! कभी-कभी उसे मनोज के ऊपर बेहद क्रोध चढ़ आता। इतने दिन हो गये ज़रा खोज-खबर तक नहीं ली! एक बार ढूँढ़ना भी चाहिये था। ये मर्द ऐसे ही होते हैं। उस समय कोसी की यह तर्क बुद्धि तनिक भी काम नहीं करती कि मनोज उसे कहाँ ढूँढ़ता; वह तो उसे धोखा देकर भाग आई थी। यदि कोई किसी को जोर से पुकारता, तो कोसी को भ्रम हो जाता था कि कहीं कोई उसीको तो नहीं पुकार रहा है, कहीं वह मनोज तो नहीं है। यद्यपि वह मन ही मन मनोज के बहुत निकट पहुँच गई थी फिर भी उससे बहुत दूर थी। मनोज को वह इसीलिये कातर-सी होकर याद करती थी कि मनोज के सिवा उसका और कोई सहारा नहीं मालूम होता था। उसके मन में शहर में रहने का आकर्षण था। मनोज शहर में ही रहता था और कोसी उसके साथ ब्याही गई

थी। कोसी मन ही मन कहती कि उसका यह धर्म था कि वह उसकी खोज-खबर लेता और उसे अपने साथ लिवा जाता। कभी-कभी वह सपने में मनोज को देखती कि वह उसकी मौसी से झगड़ा कर रहा है और कोसी को पकड़ कर लिये जा रहा है।

उन्हीं दिनों कोसी एक बात और भी सुनने लगी। उसके कानों में इस बात की भनक आने लगी कि यहाँ से दो कोस पर कोई एक पुनाई सिंह रहते हैं। दो-तीन दिन हुए कि उनकी एक रखेली मर गई है और मौसी के साथ उसके सम्बन्ध में बात-चीत चल रही है। कोसी सिहर उठी क्योंकि मौसी उससे यह बात नहीं कहती थी। इसके अन्दर क्या रहस्य हो सकता है। जैसा कि मौसी ने वादा किया था। उसके अनुसार तो कोसी को सारी बातें मालूम होनी चाहिये थीं। भागने का प्रबन्ध भी पहले से हो जाना चाहता था; लेकिन मौसी इस मामले में कुछ बोलती तक नहीं थी। अरे! तो क्या जन्म भर यहीं रहना पड़ेगा? ऐसा कभी नहीं हो सकता। वह ऐसा कभी नहीं होने देगी। अन्त में उसने जो अपना कर्तव्य निश्चित किया वह यद्यपि शान्त-सा था, मगर मौसी को बड़े जोर से भड़का देनेवाला था। मौसी अपनी बहन की बेटी का सुख चाहती थी, मगर स्वच्छन्दता उसे कदापि पसन्द नहीं थी। वह कोसी को अपने मन की मालकिन देखना पसन्द नहीं करती थी। घर और वर देखकर यदि वह अपने बुढ़ापे के लिये कुछ पैसे बना सके, तो इस में भी उसे कोई आपत्ति नहीं मालूम होती थी। इस में मनोज ही एक था जिसकी बात उठ सकती थी; लेकिन बड़ी निर्विघ्नता पूर्वक मनोज के पंजे से

कोसी को खींचे हुए उसे काफी दिन हो गये थे। उसे वह भली भाँति जानती नहीं थी। जितना वह उसे जानती थी उतना वह पसन्द नहीं था। एक तो उसका हाथ कटा हुआ, दूसरे वह भीख माँगता था। कोसी एक भिखमंगे के पल्ले पड़े यह उसे मंजूर नहीं था। कोसी को तो वह अच्छे घर में देखना चाहती थी। उसकी दृष्टि में कोसी के लिये इसी में सुख था कि उसके पति का अपना कोई घर-दरवाजा हो, थोड़ी-बहुत खेती हो और समाज में इज्जत हो। यह कहां अच्छा है कि दर-दर भीख माँगना और गुजारा करना? भिखमँगों को तो जो पाता है वही दुरदुराता है। कोसी अगर इज्जतदार घराने में रहेगी तो हमारा भी मान होगा।

मगर कोसी को वह उस दिन गठरी वगैरह बाँधते देख अचम्भित हो गई। अवाक् होकर देखने लगी। कोसी ने कहा—मौसी, मैं आज ही यहाँ से चली जाऊँगी।

मौसी जैसे आसमान से गिर पड़ी। बोली—आज ही? क्यों?

कोसी ने कहा—हाँ मौसी, मैं आज ही चली जाऊँगी।

मौसी ने तिक्त कण्ठ से पूछा—तू क्यों जायगी? कहाँ जायगी? पटने? वहाँ तेरा कौन है? किसके लिये जायगी?

कोसी के दिल में मनोज का नाम रुलाई की तरह उमड़ने लगा। जीभ तक वह नाम आया, पर वह लाज के मारे न बोल पाई।

मौसी का क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा रहा है। ऐसी उसने कल्पना भी नहीं की थी। लड़की की बदमाशी तो देखो! आग होकर बोली—तू वहाँ नहीं जायगी। वहाँ तेरा कौन है? कौन, वही लूला

न ? तू उसी भिखमँगे के लायक है ? मैं अपने घर की बेटी को एक भिखमँगे के यहाँ नहीं जाने दूँगी। कहे देती हूँ कभी नहीं जाने दूँगी।

कोसी आँचल के छोर से आँसू पोंछने लगी। रोती-रोती बोली—तुम्हींने उसे अपना बनाया था, अब तुम्हींने उसे पराया बना दिया !

कुछ ठहर कर रोती ही रोती वह झुँझला कर बोली—जाओ ! मैं कहीं नहीं जाती; जो तुम्हारे मन में आवे वही करो।

इसके बाद उसने झटके से अपनी गठरी खोल डाली। तमाम चीजों को आँगन में फेंक दिया। और बिसूर बिसूर कर रोने लगी।

मौसी पहले तो चुप रही। अनुभवी औरत थी। पहले उसका क्रोध तनिक ठंढा हो लेने दिया तब कोसी को समझाने लगी—तू तो कुछ जानती नहीं है। मैं तुम्हारा बुरा कभी नहीं देख सकती। मैं तो अपने सात जन्म के दुश्मन का भी बुरा नहीं चेतती और तू तो अपनी बेटी है। मैं जो कुछ करना चाहती हूँ वह तेरे भले के लिये करूँगी। मैं वही करना चाहती हूँ जिसमें तुम्हारा और मेरा दोनों का भला हो। तेरी उम्र कम है इसीलिये कुछ समझती नहीं। बेटी, मेरा विश्वास कर; मैं जो कुछ करूँगी तेरे भले के लिये ही करूँगी।

कोसी ने रोकर कहा—चाहे जो कहो मौसी; लेकिन मुझसे इस गाँव में तो नहीं रहा जायगा।

मौसी ने कहा—बस, फिर वही बात। अरे मैं तुझे खुद ही यहाँ नहीं रहने दूँगी।

कोसी को जरा ढाढ़स हुआ और मौसी फिर कहने लगी---लेकिन यहाँ खराबी क्या है? गाँव में भी तो आखिर आदमी ही रहते हैं। मैं ही यहाँ सारी जिन्दगी रह आई, लेकिन मुझे कभी बुरा नहीं लगा। यहाँ कितना शान्त मालूम होता है। कुछ पड़ जाय तो लोगों की मदद मिलती है। शहर में तो कोई किसी को पूछनेवाला भी नहीं! कोई मरता भी रहे तो आदमी उसके गले में एक बूंद पानी नहीं डालने जायगा। यही तो है तुम्हारा शहर। इसी जिन्दगी में बहुत कुछ देखा है, योंही बाल सुफेद नहीं हो रहे हैं। तुम्हारा शहर भी देखा है और अपना गाँव भी देखा है। मुझसे कोई बात छिपी नहीं।

और इसके बाद एक लम्बी साँस लेकर बोली---खैर, तुम्हारी जैसी मर्जी!

कोसी ने उस दिन कोई काम नहीं किया। सारा दिन चारपाई पर लेटी रही। यद्यपि वह रो नहीं रही थी फिर भी उसका मन बहुत अशान्त था। वह अपने भविष्य को किसी प्रकार भी नहीं देख पाती थी। सोचती थी किसी तरह यहाँ से छुटकारा पाऊँ तो एक क्षण भी नहीं टिकूँगी। आज उसके मन में यह आता था कि मनोज कहाँ होगा? उसके बारे में वह क्या सोच रहा होगा? उसके लिये कोसी के मन में एक बहुत ही कोमल प्यार का भाव आता था और वह उस समय उसकी गोद में लेटकर रोने को आतुर हो रही थी।

उस दिन वह घर सूना था। मौसी तब ही न जाने कहाँ चली गई थी। कोसी ने उसे खोजा भी नहीं। मौसी की उसे कोई जरूरत नहीं

मालूम होती थी। वह होती तो कोसी का मन और भी खराब रहता।

सांझ के समय घर में मौसी की आवाज सुनी गई। उसकी कण्ठ ध्वनि में हर्ष का आभास था। उसने कोसी को पुकार कर कहा—कोसी. अरे यहाँ आओ; तुम्हे लेने आये हैं।

कौन लेने आया? मेरा कौन? कहीं मनोज तो नहीं? वह धड़-फड़ा कर उठी और लपक कर बाहर निकल आई। मनोज तो नहीं. वहाँ एक दूसरा आदमी था। गठीला बदन, नाटा कद, उभरे हुए गाल और बड़ी-बड़ी मूँछें। सिर पर छींट की एक पगड़ी थी, हाथ में मोटी-सी छड़ी। घुटने तक की धोती पहने हुए थे। एक अत्यन्त सुन्दर रेशमी मोजे के ऊपर बेडौल चमरौधा जूता पहन कर वह कोसी को लेने आये थे।

कोसी ने उसे देखा और स्तब्ध रह गई।

मौसी ने एक मीठी झिड़की के साथ कहा—अरे, खड़ी-खड़ी देख क्या रही है; प्रणाम कर। यही पुनाई सिंह हैं।

कोसी तब भी स्तब्ध, चुपचाप, ठिठकी खड़ी रही। फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ी और पुनाई सिंह के चरणों पर अपना सिर रख दिया। पुनाई सिंह ने पीठ थपथपा कर उसे आशीर्वाद दिया और बाँह पकड़ कर खड़ा किया।

मौसी बोली—आज से ये ही तुम्हारे मालिक हैं। संसार में पति ही परमेश्वर है। पति की सेवा से ही स्त्री को मुक्ति मिलती है।

मौसी के चेहरे पर हर्ष था, शान्ति थी। उसकी बोली में भी एक प्रकार के सुख का आभास मिल रहा था। कोसी चुप

खड़ी थी। दोनों आँखों से आँसू के अनेक बूंद निकल कर गालों पर फिसल रहे थे। उसके होंठ धीरे-धीरे काँप रहे थे। वह खड़ी-खड़ी रो रही थी।

पुनाई सिंह ने उसकी ओर दृष्टि डाल कर कहा—यह तो रो रही है।

मौसी ने उसका हाथ पकड़ लिया और समझाना शुरू किया—बावली, रोती क्यों है ? तू तो सदा मेरी आँखों के सामने रहेगी, इसीलिये मैंने इनके हाथों सौंपा है। बराबर आनाजाना रहेगा। हर अठवारे मैं वहाँ जाया करूँगी, हर पखवारे तुम्हें लाया करूँगी। इसमें रोना काहे का ? चुप हो जा।

कोसी और भी फफक फफक कर रोने लगी। वह भूल गई कि यहाँ कोई दूसरा आदमी भी खड़ा है जो उसका स्वामी होगा। वह रो रही थी, बिसूर रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे उसका कलेजा पानी-पानी होकर आँखों की राह बहा जा रहा है।

कोसी आँगन से बाहर लाई गई। दरवाजे पर एक जराजीर्ण पालकी लगी हुई थी। ऊपर से कपड़े देकर उसे पर्देदार बना लिया गया था। कोसी ने जी कड़ा करके अपने आँसू पोंछ लिये और चुप चाप पालकी पर बैठ गई! मौसी आगे बढ़ी और पालकी के अन्दर सिर डाल कर स्नेह सिक्त कण्ठ से बोली—कोसी, तू मेरी बेटी है; लेकिन सच पूछ तो तू ही मेरी अपनी मा है जो जरूरत पर मुझे काम दे रही है। और मैं तुझसे क्या कहूं बेटी; मेरी इज्जत रखना।

कोसी ने सिर उठा कर मौसी की ओर देखा। मालूम हुआ जैसे वह कुछ बोलेगी; लेकिन कुछ नहीं बोली। एक बार देखा और

सिर झुका लिया। तबतक पालकी उठ चुकी थी। कहार लोग चलने लगे। कोसी चुपचाप पालकी के अन्दर बैठी थी। न उसकी आँखों में आँसू थे और न चेहरे पर कोई भाव। उसकी दृष्टि चुपचाप सामने की ओर जमी हुई थी। मौसी का घर धीरे-धीरे दूर होता जा रहा था; लेकिन पता नहीं वह क्या देख रही थी।

पुनाई सिंह अपने टाँघन पर सवार होकर कुछ दूर तो पालकी के साथ-साथ चले; लेकिन फिर पीछे क्या जी में आया तो आगे बढ़ गये।



१०

पुनाई सिंह ने कोसी को खरीदने के लिये पचास रुपये नकद दिये थे। बाकी रुपये उनके पास नहीं थे इस कारण एक जोड़ा गाय दे दिया था। कहा था कि अगर नकद हाथ में आ गये तो दे दूँगा; और नहीं तो गाय रखे रहना, कोई हर्ज नहीं। इन गायों के हाथ से निकल जाने का सदमा पुनाई सिंह की धर्म-पत्नी को बहुत ज्यादा था। अव्वल तो वह चाहती नहीं थी कि इस घर में कोई उनकी सौत आवे। अगर आवे भी, तो भी यह कोई मतलब नहीं है कि उसके पीछे घर डुबा दिया जाय। आजकल के जमाने में तो औरतें टके-टके को मारी फिरती हैं। ऐसी अवस्था में पुनाई सिंह का यह काम उसे बिल्कुल नापसन्द था। उसके बाद उन्होंने कोसी को देखा। यौवन, बड़ी-बड़ी आँखें और सुन्दर गठन के अलावा उन्हें उसमें कोई सौन्दर्य दीखा ही नहीं। सौत में भी कहीं सौन्दर्य होता है? रुक्मिणी ने कोसी को देखा और मुँह बिजका कर बोली—इसीका दाम है सौ रुपया। मुझ से कोई कहे तो दो कौड़ी में भी न लूँ।

एक दासी वहाँ थी जो बोली—बहू जी, मालिक जैसे सीधे हैं कि उनसे क्या कहा जाय। लोग उन्हें ठग ही लेते हैं।

कोसी का स्वागत उस घर में उसी प्रकार हुआ। बाद उसके दासी ने उसे एक कमरा दिखला दिया कि यही तुम्हारा कमरा है। उसी कमरे के एक कोने में एक चूल्हा था जिसे दिखला कर बोली—'वहीं

तुम्हें बनाना-खाना होगा। सरकारी रसोई से तुम्हें भोजन नहीं मिलेगा।' यह प्रबन्ध इसी लिये था कि कोसी दूसरी जाति की लड़की थी। खान्दानी क्षत्रिय लोगों की रसोई घर में घुसने का उसका कोई अधिकार नहीं था।

पुनाई सिंह खान्दानी क्षत्रिय थे इसी कारण उन्हें उपपत्नी की आवश्यकता रहती थी। उनके वंश में सदा से उपपत्नी रखने का, शराब पीने का और रंडियों का मुजरा सुनने का दस्तूर चला आता था। पंच मकार के पीछे सारी जायदाद डूब गई थी; लेकिन जो सदा से होता आया है उस दस्तूर को तोड़ देने से दुनिया वाले क्या कहेंगे। पैसा अब भले ही न हो; लेकिन शान तो वही है. खान्दान तो वही है। सारी दुनिया आगे बढ़ रही थी। यहाँ तक कि दुनिया के साथ-साथ उनकी जमीन-जायदाद, रुपये-पैसे सबकुछ चले जा रहे थे; लेकिन पुनाई सिंह अपने वंश के गौरव की पताका लेकर जहाँ के तहाँ खड़े थे। इनलोगों के यहाँ कोई समझदार आदमी व्याह करने को राजी नहीं होता था। गरीब घर की लड़कियाँ आती थीं और उन्हें भी उस वंश के गौरव को उसी प्रकार पकड़े रहना पड़ता था। पुनाई सिंह ने अबतक पाँच उपपत्नियाँ रखी थीं। उनमें तीन तो भाग गई थीं। चौथी मर गई थी। थी। पाँचवी कोसी थी। पुनाई सिंह अपने घर के दरवाजे पर बैठ कर मूँछों पर ताव देते थे कि लोग कहते थे कि कोई नहीं मिलेगी। अरे मिलेगी क्यों नहीं? ले आया न एक! बस, यही उनका मतलब था जो पूरा हो गया था। बाकी कोसी से उन्हें कोई मतलब नहीं था। जिस तरह शान और दिखलावे के लिये लोग मोटर

या हाथी खरीदते हैं उसी तरह दिखलाने के लिये ही इन्हों ने कोसी को रखा था। इससे ज्यादा वे और कुछ नहीं चाहते थे।

कोसी घर में आई और रुक्मिणी ने महरी को जबाब दे दिया। अब वही वर्तन माँजती थी, चौका देती थी, आग सुलगाती थी, अदहन चढ़ाती थी। घर का सारा काम करती थी। दिन भर काम करने के बाद दोपहर को जरा अवकाश मिलता था उस समय उसे अपने लिये भोजन बनाना पड़ता था। वह एक ही शाम भोजन बनाती और दोनों शाम खाती थी। साँझ हुई कि फिर काम का चर्खा चला। रात के समय पुनाई सिंह अपनी पत्नी के साथ सोने जाते थे उस समय कोसी को दोनों स्त्री-पुरुष को तेल लगाने के लिये जाना पड़ता था। उसके प्रति किसी का भी कोई सद्भाव नहीं था। वह घर की एक दाई से भी खराब हालत में थी। दाई तो किसी बात में उज्र कर सकती है; लेकिन कोसी को किसी अवस्था में भी कोई उज्र नहीं हो सकता था। रुक्मिणी यद्यपि कोसी से यथासाध्य सभी काम लेती थी फिर भी उससे कभी खुश नहीं होती थी। वह जलती हुई आँखों से उसकी ओर देखती थी और अत्यन्त निर्मम भाव से काम के लिये आज्ञा देती थी। कोसी को हर एक बात के लिये फूँक-फूँक कर पाँव रखना पड़ता था। जरा-सी त्रुटि होने पर भी जान की खैर नहीं थी। एक दिन रात को वह रुक्मिणी के घर में ही जमीन पर सो गई थी। दूसरे दिन सबेरे जैसे ही उस पर रुक्मिणी की आँखें गईं कि उसका झोंटा पकड़ कर उसे कमरे के बाहर निकाल दिया। खरीदी हुई छोकरी और मुकाबिला करने आती है।

पुनाई सिंह को कोसी से मानों कोई सरोकार ही नहीं था। वे तो

केवल आज्ञा देना जानते थे और आज्ञा का पालन होते हुए देखना चाहते थे। इसके अलावा उन्हें और कोई मतलब नहीं था। घर में वे सभी से बातें करते थे; लेकिन कोसी से कुछ बोलते हुए उन्हें किसीने नहीं देखा। उस घर में कोसी और रुक्मिणी के अलावा और भी दो स्त्रियाँ रहती थीं। दोनों विधवा थीं। एक तो पुनाई की बहन थी और दूसरी रुक्मिणी की। कोसी को इन दोनों का भी काम करना पड़ता था। घर में नाममात्र के लिये एक नौकर था जिसका काम केवल पुनाई सिंह के लिये चिलम भरने का था। कभी तबीयत आई तो इधर-उधर झाड़ू चला दिया, कोई एक-आध काम कर दिया, और नहीं तो वस्तुतः सारा काम कोसी को ही करना पड़ता था। जब वह अकेले में होती तो उसकी आँखें भर आतीं। वह सिसकती हुई सोचा करती कि मैं क्या थी और क्या हो गई।

कोसी को यदि कहीं से सहानुभूति मिलती थी तो उन दोनों विधवाओं से। जब उनमें से किसीको कोसी से कुछ काम कराना होता था तो कोसी के प्रति जरा सहानुभूति दिखला देतीं। इस पर कोसी जी-जान से उनलोगों का काम करती थी। कोसी को वह सहानुभूति भी डरते-डरते मिलती थी। दोनों सशंक रहतीं कि कहीं रुक्मिणी देख न ले, कहीं झाँक न ले। सब कुछ इसी तरह चल रहा था। दिन, सप्ताह और महीने गुजर रहे थे।

इसी समय आ पहुँचा जन्माष्टमी का त्यौहार। रुक्मिणी को कोई सन्तान नहीं थी। इस कारण वह सन्तान-कामना से सदा व्रत रखा करती थी। रविवार को नमक छोड़ती, प्रति एकादशी और पूर्णिमा को उपवास करती। शायद ही कोई व्रत ऐसा होगा जिसे

वह न करती हो। कभी गणेश चतुर्थी है, कभी छठ है, कभी कुछ है, कभी कुछ है। और न हुआ तो कभी योंही दिन भर व्रत रखती और रात को सत्यनारायण की कथा सुनती। जितने देवताओं का नाम वह जानती थी सबसे उसने मानता मान रखी थी कि उसे कोई पुत्र हो; लेकिन अभी तक उसकी कामना सफल नहीं हुई थी। जन्माष्टमी के लिये पहले से ही तैयारियाँ होने लगीं। ग्वाले को दूध और दही के लिये बयाना दे दिया गया। रुक्मिणी रोज अपने स्वामी से तक़ाजा करती कि तुम बस रोज बैठे ही रहते हो, जरा यह नहीं होता कि जन्माष्टमी के लिये कपड़े लेते आवें। पुनाई सिंह रोज वादा करते कि अच्छा आज जरूर बाजार जाऊँगा; लेकिन जाते नहीं थे। इसका कारण रुक्मिणी क्या समझे; बाजार में पचासों जगह से सैकड़ों का बकाया था। वहाँ जाकर कौन जहमत मोल लेने जाय।

सोमवार को जन्माष्टमी पड़ती थी। रविवार को पारण होता था। उस दिन जब कोसी रुक्मिणी से अपना सीधा माँगने गई तो कहा—दीदी जी, आज मुझे अरवा चावल ही दीजिये। कल मैं भी उपवास करूँगी।

रुक्मिणी को उसकी स्पर्द्धा पर क्रोध आया। सुन कर वह जल उठी। उसने उपवास करने का कारण पूछा।

कोसी ने जवाब दिया—मुझे दो महीने से गर्भ है। इसीलिये उपवास कर रही हूँ कि जन्म लेनेवाले का भला हो।

रुक्मिणी के दिल पर मानों किसी ने जलता अंगार रख दिया हो। उसकी अजीब हालत हो गई। मालूम हुआ जैसे कोसी ने उसके

अस्तित्व का सम्पूर्ण अधिकार ही छीन लिया है। उसने मुँह बिचका कर कोसी को अरवा चावल दे दिया, कुछ बोली नहीं। घर का सारा काम यथोचित ही चला; लेकिन दिन भर रुक्मिणी गम्भीर थी। उसे मालूम हो रहा था कि यह छोकरी सूधी गाय-सी बनी रहती है; मगर चुपके-चुपके न जाने किस तरह उसके पति को ठग लिया। आज यदि उसका वश चलता तो कोसी को जीती ही मिट्टी में गाड़ देती। वह जीवन भर पूजा-पाठ कर आई और कुछ नहीं हुआ। इधर न जाने यह कहाँ की बासकाटी आपहुँची है जो······

गलतियाँ सभी से हो जाती हैं। कोई भी ऐसा नहीं होगा जिसने कभी गलती न की हो। जन्माष्टमी के दिन कोसी से भी एक गलती हो गई। गिलास में पानी लेकर झपटी हुई आ रही थी। उसी जगह दूध का भांडा रखा हुआ था। गलती से कोसी का पैर उस पर पड़ा और सारा दूध गिर कर बरामदे में फैल गया। कोसी फक हो गई। वह इस तरह घबरा गई मानों उसने किसीका खून कर डाला हो। अपराधिनी की भाँति सहसा मुँह से निकल पड़ा—अरे राम, यह क्या हो गया!

इतने में ही एक बहुत बड़ी घटना हो गई। रुक्मिणी चूल्हे के समीप बैठी हुई प्रसाद के लिये पूआ छान रही थी। वहीं से उसने यह घटना देखी। क्रोध में उसने जलती हुई लकड़ी फेंक कर कोसी को मारा। कोसी उठ ही रही थी कि 'बापरे, चिल्ला कर गिर पड़ी। लकड़ी की चोट उसकी बाँह में लगी थी। साड़ी भी जलने लगी थी। कोसी उठी और चिल्लाती हुई दरवाजे की ओर भागी। बद-

हवास होने के कारण चौखट से ठोकर खाकर गिर गई। लोग बचाने को दौड़े। साड़ी की आग बुझा दी गई; लेकिन बाँह का कच्चा माँस थोड़ा-सा जल गया था। कोसी उसकी पीड़ा से कराह रही थी।

लोगों ने आधी रात तक कोसी के कराहने की आवाज सुनी। उसके बाद कराहना बन्द हो गया। लोगों ने समझा शायद वह सो गई हो। मगर दूसरे दिन सवेरे घर में उसका कहीं पता नहीं था। रुक्मिणी ने सुना तो मुँह बिचका दिया। आखिर ऐसी बदमाश औरत और कर ही क्या सकती है। पुनाई सिंह के चेहरे पर हर्ष-विषाद का कोई भी भाव नहीं आया। अपने नौकर को बुला कर इस बात की बड़ी गम्भीरता से ताकीद की—यह खबर कोई जानने न पावे। सुनने वाले क्या कहेंगे। शिकायत होने से खान्दान के नाम पर बट्टा लगता है।

दोपहर को खाने-पीने के बाद पुनाई सिंह अपने टाँघन पर सवार होकर कोसी की मौसी के यहाँ जा पहुँचे। मौसी बाहर बैठी हुई जमीन पर गेहूँ पसार कर उसके कंकड़ बीन रही थी। पुनाई सिंह अपने टाँघन पर से उतरे और सामने के शरीफे के पेड़ में घोड़ा बाँधने लगे। इसी समय मौसी की नजर उनपर पड़ी। वह पुनाई सिंह को देखकर उठी और अन्दर से टाट का एक टुकड़ा लाकर आदर के साथ बिछा दिया। उनकी ओर देख कर बोली—वह यहीं है। सो रही है। बैठो।

मौसी का चेहरा गम्भीर था और आवाज रूखी। पुनाई सिंह ने उसकी ओर अपराधी की भाँति देखा और टाट पर बैठ गये।

दोपहर का समय था। पानी बरस कर खुल गया था; लेकिन आकाश में काले बादल टँगे हुए थे। आशा थी कि फिर थोड़ी देर में पानी बरसेगा।

मौसी की बात से पुनाई सिंह को आश्वासन मिल ही चुका था। बात को सुलभरूप से आगे बढ़ाने के लिये उन्होंने बात बदल कर बात शुरू की। उन्होंने कहा—तुम्हारा घर चूता तो नहीं है?

मौसी बोली—जहाँ-तहाँ चूता ही है। गरीबों के घर की क्या बिसात। हमलोग इसीमें रहने के आदी हो गये हैं।

पुनाई सिंह ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। वे फिर कहने के लिए कोई बात खोजने लगे।

कुछ ठहर कर मौसी ने निस्तब्धता भंग की। बोली—माना कि वह तुम्हारी अपनी स्त्री है और कोसी को तुमने रखेल के तौर पर रखा है; मगर यह कहाँ का इन्साफ है कि वह कोसी की जान लेले। आज हम गरीब हैं, नहीं तो थाना-पुलीस करके दिखला देते। भले घर की है तो इससे क्या, उन्हें भी अदालत चढ़ना पड़ता।

पुनाई सिंह बगल झाँक कर बोले—तुम्हीं कहो, इसमें मेरा क्या कसूर है?

बुढ़िया ने अपनी आवाज को तेज करके कहा—तुम्हें अपनी औरत को कब्जे में रखना चाहिये था।

पुनाई सिंह ने कहा—यह तो मैंने तुम से पहले ही कह दिया था कि वह मेरे हाथ के बाहर की बात है। मैंने तुम्हें शुरू में ही कहा था कि अब मेरी उम्र जवान औरत पर कब्जा कर सकने की नहीं

है। कोसी को मेरे यहाँ दासी के तौर पर रहना होगा। और तुम्हीं थी जिसने इस बात को मंजूर किया था। तुम्हीं बोलती थी कि अगर तुम मेरा निर्वाह नहीं करोगे तो मैं बुढ़ापे में मर जाऊँगी।

मौसी ने कहाँ—इसीलिये तो मैं कुछ नहीं कहती; लेकिन अगर दासी ही हुई, तो क्या दासी की जान ले ली जाती है। यह कहीं का दस्तूर नहीं है।

पुनाई उसकी बात सुन कर झल्ला उठे और बोले—मैं यह सब सुनने नहीं आया हूं। कहाँ है वह, बुलाओ उसे; साथ ही साथ लेता जाऊँ।

मौसी पुनाई की तेजी देख कर पहले तो स्तब्ध हो गई, फिर गम्भीर होकर बोली—अभी वह सो रही है। उसकी तबीयत खराब है। वह नहीं जा सकती।

पुनाई ने तनिक असमंजस के भाव से कहा—जरा एक बार जगा कर उससे पूछ तो लो।

इसी समय घर के अन्दर से आवाज आई—'मैं नहीं जाऊँगी!' यह कोसी की आवाज थी। दोनों ने चौंक कर सिर उठाया और देखा कोसी वहीं पर चौखट पकड़ कर खड़ी है।

मौसी ने प्यार और आज्ञा के स्वर में कहा—तू यहाँ क्यों चली आ रही है! तेरी तबीयत खराब है न। जा सो जा।

कोसी ने मौसी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। तेज आवाज में बोली—मौसी, तुम इनसे कह दो कि ये यहाँ से चले जायँ। मैं अब जान ले लेने से भी वहाँ नहीं जाऊँगी।

मौसीचुप थी। पुनाई सिंह अवाक् थे। जिस कोसी ने पल

भर के लिये भी सिर उठा कर उनकी ओर ताकने का साहस नहीं किया था आज वही इस तरह बोल रही है। उन्हें उस वास्तविकता के ऊपर विश्वास ही नहीं हो रहा था कि आज वे क्या देख रहे हैं, क्या सुन रहे हैं।

कोसी ने उसी आवाज में कहा—मैंने अपने को भी देखा, पराये को भी पहचाना। किसी का कोई नहीं है। सब एक दूसरे की जान लेने में ही अपनी भलाई समझते हैं। तुम मेरी मौसी थी; मैंने तुम्हारा विश्वास किया था। सोचा था कि कम से कम किसी ऐसे घर में जरूर होगी जहाँ एक मुट्ठी अन्न मिलेगा और जी को जरा आराम होगा। तुम से इतना भी नहीं हुआ, मौसी! मैंने तुम्हारे लिये अपना तन बेच दिया, मैंने क्या नहीं किया, मौसी?

अब वह रो रही थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। वह रोती हुई आगे बढ़ रही थी और बोल रही थी—मौसी, मैं पाँवों पड़ती हूँ, इनके रुपये वापस कर दो। ये लोग कसाई हैं, कसाई। ये आदमी का माँस खाते हैं और खून पीते हैं। इसीसे इनकी भूख-प्यास मिटती है, इसीसे ये अपने को बड़ा आदमी समझते हैं।

कोसी अपनी मौसी के पैरों पर गिर पड़ी। बोली—इनके रुपये वापस कर दो, और इनसे कह दो कि ये यहाँ से चले जायँ।

इस अपमान की कड़वी घूँट को पीना पुनाई सिंह के लिये असह्य था। जिस छोकरी ने आजतक उनके आगे एक शब्द भी

बोलने का साहस नहीं किया था वह आज कितना कह गई। वे उठ कर खड़े हुए और कोसी को लक्ष्य करके बोले—जाने को कहने की जरूरत नहीं ; मैं खुद ही यहाँ से जाता हूँ। लेकिन यह बात याद रखो कि मैं इज्जत के साथ तुम्हें लेने आया था और अब बेइज्जती के साथ तुम्हें जाना पड़ेगा।

कोसी तेज आवाज में तड़प कर बोली—सिर काट देने से भी तो मैं नहीं जाऊँगी। बेइज्जती के साथ जानेवाली कोई दूसरी होगी।

पुनाई सिंह गम्भीर होकर बोले—खैर, यह देखा जायगा। अपने घर पर कुत्ते भी शोख हो जाते हैं।

अपनी बात का जवाब सुनने के लिये पुनाई सिंह तनिक भी वहाँ नहीं ठहरे। फौरन वहाँ से चल पडे। वे गुस्से से भरे हुए थे और बेकसूर ही अपने टाँघन पर जब-तब चाबुक जड़ देते थे।

कोसी थोड़ी देर वहाँ और भी खड़ी रही। आज उसका चेहरा अजीब तरह का मालूम हो रहा था। जान पड़ता था जैसे वह पागल हो गई हो। मौसी स्तब्ध थी। उसे कुछ बोलने का साहस नहीं हो रहा था। कोसी थोड़ी देर तक चुपचाप वहीं खड़ी रही। उसके बाद जाकर अपने बिस्तर पर धम्म से गिर पड़ी। उसकी आँखें बन्द हो गई थीं और वह ज्वर की बेहोशी में अनाप-शनाप बक रही थी।

दूसरे दिन सबेरे उस झोपडी के सामने एक विचित्र बात देखी गई। मौसी ने देखा दो अक्खड़ आदमी पगड़ी बाँधे हुए उसके दरवाजे

पर बैठे हुए हैं। उसे डर लगा कि कहीं पुलिस के आदमी तो नहीं हैं। पूछने पर उनलोगों ने कहा—हमलोग पुनाई सिंह के आदमी हैं, कोसी को लेने आये हैं।

यह सुनना था कि मौसी आग हो गई। कोसी का कष्ट देखकर उसकी छाती फट रही थी। यह तो हुआ नहीं कि कुछ दवा-दारु का बन्दोबस्त कर दें, उल्टे ऊपर से लठधर भेज दिये। मानों औरत न हुई कोई चोर हो गई। उसने गरज कर कहा—वह नहीं जायगी; कभी नहीं जायगी।

उन लठैतों में से एक ने हँस कर कहा—अरी बुढ़िया, ज्यादा अर्र-बर्र न बोल। तू देख तो तमाशा, हम कैसे उसे ले जाते हैं।

इस पर मौसी का गाली देना वाजिब था। वह तरह-तरह की गालियाँ बकने लगी।

उनमें से वही लठैत फिर बोला—बुढ़िया माता, हम यहाँ गाली सुनने नहीं आये हैं। तू जाकर एक दफे उससे पूछ आ कि वह जाना चाहती है कि नहीं?

बाहर की ये बातें ऊँची आवाज में हो रही थीं। कोसी ने भी सुना और मौसी को अन्दर बुला कर पूछा—क्या बात है, मौसी?

मौसी ने हाल बता दिया और बोली—अब मैं तुझे कभी अपनी आँखों से अलग नहीं करूँगी। जाती हूं उस मुए के रुपये वापस कर आती हूँ।

मौसी बड़ी कातर थी और उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। वह अपना काठ का बक्स खोल रही थी और कह रही थी—लेरे

मुहँजला, तू अपना रुपया ले ; अब तो मेरी बेटी की जान छोड़। मैंने जो किया उसका दण्ड मुझे मिल गया। भगवान मुझे नरक में भी सुख ने नहीं रखेंगे। ले, तू अपना रुपया ले-ले। और तू क्या करेगा ?

कोसी अपनी मौसी को रोक कर बोली—रहने दो मौसी, रुपया वापस देने को कोई जरूरत नहीं। मैं ही वहाँ जाती हूँ।

मौसी आश्चर्य से चकित होकर बोली—ऐसा कैसे हो सकता है ? तू फिर उसी नासकाटे के यहाँ जायगी ? ऐसा कभी नहीं होगा। वह अपना रुपया वापस लेगा ; और क्या कर सकता है !

कोसी ने शान्त भाव से कहा—रुपया वापस देने की कोई जरूरत नहीं है मौसी। इसी पैसे के लिये तो आदमी बेईमान है। इसीके लिये आदमी सब कुछ कर सकता है। मुझे रोको मत ; मैं वहाँ जाऊँगी।

मौसी ने चिल्ला कर कहा—चुप बैठ ; तू कभी नहीं जा सकती। तुझे मेरी कसम, तेरी मरी मां की कसम !

उसने कातर होकर कोसी को पकड़ लिया और रोने लगी।

कोसी ने कहा—मौसी, अब तू चुप रह ; मैंने तेरा कहा मान लिया। अब तुझे मेरा कहा मानना पड़ेगा। मैं जाती हूँ।

कोसी झटके से छूट कर मौसी के आलिंगन से बाहर निकल गई और उन लठैतों के पास जाकर बोली—चलो, मैं चल रही हूँ।

और वह चल पड़ी।

कोसी उनलोगों से भी आगे-आगे तेजी से चली जा रही थी।

ज्वर से उसका शरीर तप रहा था, जली हुई बाँह में पीड़ा हो रही थी। उसकी आँखें चढ़ गई थीं। ऐसा मालूम होता था कि ये लाल-लाल आँखें निकल कर गिर जायँगी।

भादो महीने का सवेरा था। आज बहुत दिनों पर सूरज के दर्शन हुए थे। हरे-भरे खेतों में सफेद किरणें बड़ी अच्छी लग रही थीं। खेतों की मेड़ पर इधर से उधर बगुले उड़ रहे थे। सूरज के साथ बादलों की आँखमिचौनी हो रही थी। कभी सूरज दिखलाई देता, कभी छिप जाता।

जिस समय कोसी वहाँ पहुँची उस समय तक वह बहुत थक गई थी। पुनाई सिंह बाहर अपनी चौकी पर बैठे दिखलाई नहीं दिये। कोसी चुपचाप अन्दर घुस गई। रुक्मिणी उस समय तरकारी बना रही थी। उसने एकबार सिर उठा कर कोसी की ओर देखा, मगर कुछ नहीं बोली। कोसी सीधे अपने कमरे में चली गई और वहाँ नंगी चरपाई के ऊपर गिर पड़ी।

—०—

११

कोसी के एकाएक गायब हो जाने से मनोज के कलेजे पर बहुत ही बड़ी चोट पड़ी। उसे यह विश्वास ही नहीं होता था कि ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है। वह पागलों की तरह कोसी को ढूँढ़ता हुआ इधर-उधर घूमा करता था। लेकिन उसकी आशा पूरी नहीं हुई। वह थक कर निराश हो गया और अपने उसी पुराने काम में जाकर जुट गया। उसी तरह गुड़ लपेट कर पैरों में पट्टी बाँधी और हार्डिंज पार्क के सामने बैठ कर भीख माँगने लगा। इन थोड़े ही दिनों में वह बहुत दुबला हो गया था। मिजाज में एक प्रकार का तीखापन भर गया था। अत्यन्त शीघ्र ही चिड़चिड़ा उठता था। अकेले में बैठ कर वह कोसी को धिक्कारता था। यहाँ तक कि सम्पूर्ण स्त्री जाति को दोषी करार देने में भी उसे कोई आपत्ति नहीं होती थी। सबसे बड़े दुख की बात तो यह थी कि उस अपार दुख में भी उसे कोई ढाढ़स बंधानेवाला नहीं था। अपने दुख की आग में वह अकेला ही जलता था और अपनी आशा में जीता था। उसकी आशा भी विचित्र प्रकार की थी। हृदय में प्रतिहिंसा की भावना करवटें लेती थीं। सोचता था कभी तो कोसी को देखेगा। जिस समय उसे देखेगा उस समय उसे कभी जीता नहीं छोड़ेगा। जैसा उसने किया है उसका पूरा दण्ड उसे भोगना ही होगा। यह प्रतिहिंसा की आग धीरे-धीरे बुझ गई; मगर फिर भी उसकी मनःस्थिति

ठीक नहीं हुई । वह अपने ऊपर बिल्कुल ही ध्यान नहीं देता था। क्यों अपनी फिक्र करता? दुनिया में तो उसका कोई नहीं था। जिसे प्यार किया था उसीने दगा दे दिया और अंगूठा दिखा कर भाग गई। तेज से तेज धूप में भी वह निर्विकार बैठा हुआ भीख माँगा करता था। पैसों की अब उसे बिल्कुल परवा नहीं थी। एक तो उसकी कमाई ही अब कम थी, दूसरे जो कुछ भी पाता था उसे बेदरंगे खर्च कर देता था। जिस दिन बहुत ही कम मिलता और उसका पेट नहीं भर पाता उस दिन भी उसे कोई चिन्ता नहीं होती। वह उसी प्रकार विमनस्क बना रहता। जब कोसी ध्यान में आती तो वह एक लम्बी साँस छोड़ कर बड़बड़ा उठता—तू भाग गई तो भाग गई; जहाँ तू है वहीं सुखी रहना।

वह सोचता था कि जब मैं उसे इतना प्यार करता हूँ और वह मेरे साथ ब्याही गई है, तो कदापि वह किसी दूसरे की नहीं होगी! लेकिन वह भागी क्यों? और इसका जवाब साफ था। वह झुँझला उठता, बुरी तरह जमीन पर अपना पैर पटकता और चिड़चिड़ा कर कहता—तू मर क्यों न गई! लेकिन इस बात से उसे रोमांच हो जाता। उसे ख्याल होता कि कहीं उसके इस शाप से कोसी सचमुच न मर जाय; और वह कातरसा होकर कह उठता—नहीं-नहीं, तू जहाँ है वहीं सुखी रहना।

मगर ये सब बातें धीरे-धीरे मिट रही थीं। कोसी की स्मृति अब क्षीण होने लगी थी। वह धीरे धीरे अब एक दूसरा आदमी सा होने लगा था। कोसी की स्मृति महीनों नहीं आती। वह इधर-उधर की बातों में भूला रहता। अक्सर वह अपने बचपन के दिनों का स्मरण

किया करता था और सोचा करता था कि वे दिन कितने सुन्दर थे। भीख माँगने में वह मन लगाता; लेकिन उसे सफलता नहीं मिलती थी। कई बार उसे ख्याल आया कि इस जगह को छोड़ दे; लेकिन उस स्थान से उसे एक प्रकार का प्रेम हो गया था, छोड़ते बनता नहीं था। यह सब होते हुए भी मन की गति एक ही प्रकार की नहीं थी। कभी-कभी कोसी की याद उसके मन में दौरे की भाँति आती थी। उस समय अपनी उस पुरानी कोसी के लिये उसके मन में अपार प्यार उत्पन्न हो आता। वह मानों आत्मविस्मृत-सा होकर उस स्थान पर जा खड़ा होता जहाँ पर खड़ी होकर एक दिन कोसी ने उसे कहा था—तुम हो बड़े होशियार! वह उस स्थान पर भी खड़ा होता जहाँ शुरू-शुरू कोसी ने रुक कर पहले पहल उससे बातचीत की थी। मनोज स्वयं कोसी बन जाता था और उसी तरह रुक कर अभिनय करता था—'तुम यहीं बैठते हो जी?' मानों वह किसी मनोज से पूछ रहा हो। उस समय वहां की धूलि के कण-कण से उसे प्रेम उत्पन हो जाता था। वह सारा स्थान कोसी की प्रेम-स्मृतियों से भरा हुआ था। ये दौरे बीस-पचीस मिनट तक रह कर शीघ्र ही समाप्त हो जाते थे। उसके बाद उसका मन शान्त हो जाता। तब उसके मन में एक कटुता भरने को आती। उसका मन ऐसा सोचना चाहता कि कोसी अभी कहां होगी; कैसी होगी? लेकिन वह प्राणपण से अपने मन में इन बातों को उठने से रोकता और अजीब तरह से मुँह बनाकर हँसता हुआ कहता—हरामजादी ने सोचा था कि मनोज मर जायगा; लेकिन उसे मालूम होना चाहिये था कि आदमी कभी मरता नहीं है!

उस साल की गर्मी बड़ी तेज थी। ऐसी चिलचिलाती हुई गर्मी बहुत दिनों से नहीं पड़ी थी। अखबारों में प्राय: रोज लोगों के लू से मरने की खबर छपा करती थी। मनोज उसी सख्त धूप में सिर्फ एक छाता के भरोसे बैठा रहता था। उस खुले हुए आसमान के नीचे की खुली हुई गर्मी उसे कम नहीं सताती थी; उसने उस वर्ष की गर्मी वहीं पर बैठ कर बिता दी। आमदनी बहुत कम हो जाने के कारण वह केवल सत्तू खाता था। एक हांड़ी में पानी भर कर रख लिया था। जब प्यास लगती तब उसीसे पानी लेकर पीया करता। कहीं आने-जाने की उसकी प्रवृति नहीं होती। वह पहले की अपेक्षा बहुत आलसी हो गया था।

जेठ बीतते न बीतते ही आसमान काले-काले बादलों से लद गया। उमड़-घुमड़ कर वे बादल बरस जाया करते। धीरे-धीरे पूरी बरसात आ गई। शायद ही कोई समय ऐसा होता जब खुला आसमान देखने को मिल सकता था। दिन-रात हर समय मौके-बेमौके वर्षा होती ही रहती। मनोज की यह बरसात भी उसी छाते के नीचे बीत रही थी। वह छाता भी छिद्रों से परिपूर्ण था। जिस तरह दगाबाज दोस्त दोस्ती की ओट में अपना काम कर जाते हैं उसी तरह वह छाता भी अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर पाता था। अक्सर मनोज भींगे कपड़े पर ही दिन गुजारता। रात को भी भींगा कपड़ा बिछा कर वैसा ही कपड़ा ओढ़ता और पार्क की बेंच पर सोया करता था। यद्यपि वह नहीं जानता था फिर भी वह एक प्रकार से अपनी आत्महत्या कर रहा था। जीवन में उसके लिये कोई सुख नहीं था, कोई आशा नहीं थी। जहाँ उसने सबसे बड़ी

आशा रखी थी वहीं से उसे सबसे बड़ी निराशा मिली थी। उसे स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं आता था कि इस भाँति बराबर भींगते रहने से वह बीमार पड़ जायगा।

कोई कुछ सोचे या न सोचे प्रकृति अपना काम करती ही जाती है। यद्यपि मनोज कठजीव हो गया था, मगर एक बार कई दिन तक लगातार पानी में भींगते रहने के कारण वह बीमार पड़ गया। अब उसे किसी छायादार जगह की जरूरत पड़ी। वह वहाँ से चल कर इधर-उधर बहुत घूमता रहा लेकिन कोई इत्मिनान की जगह उसे नहीं मिली। रात को वह स्टेशन के उसी मुसाफिरखाने में पहुँचा और चुपचाप एक कोने में सो गया। दूसरे दिन जब उसकी नींद टूटी तो उसने पाया कि उसका ज्वर और भी बहुत ज्यादा बढ़ गया है। उठना चाहा; लेकिन उठ नहीं सका। वह बड़े कष्ट में था और धीरे-धीरे कराह रहा था। उसे आशा थी कि कोई आदमी यहाँ अवश्य होगा जो उसे पहचानता होगा या पहचान सकेगा; लेकिन उसे किसीने नहीं पहचाना। वह पुराना पानवाला अब नहीं था। अब उसकी जगह एक दूसरा गोरा, लम्बी मूँछोंवाला आदमी था और अपने ललाट पर रक्त चन्दन का गोल टीका लगाता था। दुनिया को किसी की उपस्थिति-अनुपस्थिति की परवा नहीं। उसका तो काम उसी तरह चलता रहेगा। मनोज ने अनुभव किया कि यद्यपि बहुत से लोग यहाँ बदल गये हैं फिर भी मुसाफिरखाने की चहल-पहल वही है। कहीं कोई अन्तर नहीं आया। बहुत से जाने-पहचाने हुए कुली भी उसके सामने से गुजरे, एकने तो उसी के बगल में बैठ कर बीड़ी पीया, मगर कोई उसे पहचान नहीं सका। मनोज

ने सोचा, लोग अजब होते हैं; आज जानते हैं, कल भूल जाते हैं।

दिनभर मनोज बहुत ही बेचैन रहा, लेकिन किसीने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। शाम होते ही वह उठ गया। अपने कपड़े उठा कर कन्धे पर रख लिये और वहाँ से चल पड़ा। वह बहुत ही धीरे-धीरे चल रहा था। उसे ज्ञान नहीं था कि वह किधर जा रहा है, कहाँ जा रहा है। वह यह भी नहीं सोच पाता था कि वह क्यों जा रहा है। कहाँ तक चला जायगा इसका भी उसने कोई अनुमान नहीं किया था। उस समय वह इस असमंजस में अवश्य था कि अस्पताल जाना चाहिये या नहीं। इसका वह कोई निर्णय नहीं कर पाता था। फिर भी वह जिस कष्ट में था उसकी अपेक्षा खराब से खराब अस्पताल भी उसके लिये हितकर हो सकता था। वह शायद अस्पताल जायगा, शायद नहीं जायगा; और वह दिशा-ज्ञानशून्य होकर आगे बढ़ा जा रहा था। वह सिर उठाकर घरों को देखता; लेकिन बुद्धि कोई काम नहीं करती, कोई भी घर उसका पहचाना हुआ-सा नजर नहीं आता। उसे मालूम होता मानों वह कोई दुःस्वप्न देख रहा है। अपने विषय में अच्छी तरह समझ सकता था कि इस प्रकार के ज्वर से मैं शायद ही मुक्ति पा सकूँगा। शायद ये मेरे अन्तिम दिन हैं। उसे इसके लिये कोई अफसोस नहीं था। वह बड़ी शान्ति के साथ मृत्यु के हाथों आत्मसमर्पण कर सकता था। उसे यह कष्ट अच्छा नहीं लग रहा था। इस कष्ट की अपेक्षा मर जाना ही वह अधिक लाभप्रद समझता था। दोपहर को पानी बरसने लगा तो वह एक सूना-सा घर देखकर उसके दरवाजे पर सो गया। इस समय उसकी इच्छा होती थी कि यदि

उसके पास पैसे होते तो किसी इक्के पर बैठ कर अस्पताल पहुँच जाता, लेकिन वह जानता था कि उसके पास सिर्फ एक ही पैसा है। इस एक पैसे से किसी भाँति भी अस्पताल पहुँचना दुर्लभ है। सत्तू की गठरी भी उसे भारी लगती थी और उसे वह पार्क में ही छोड़ आया था। मुसाफिरखाने में जबतक रहा भूखा रहा। उसके बाद वह इस तरह उसी ज्वर की हालत में निरुद्देश्य भटक रहा था।

जिस घर के दरवाजे पर वह लेटा हुआ था वह बाहर से देखने पर तो खाली मालूम होता था; लेकिन अन्दर आदमी अवश्य थे। थोड़ी ही देर के बाद एक बालिका भीतर से निकल आई। पहले तो वह मनोज को देखकर डर गई; लेकिन फिर हिम्मत बाँध कर पूछा—तुम कौन हो जी?

वह लड़की कोई पाँच वर्ष की होगी। उसके शरीर पर जापानी छींट का एक फ्राक था। देखने में वह चंचल मालूम होती थी। मनोज की ओर से कोई जवाब न पाकर वह और आगे बढ़ आई और पूछा—अरे तू कौन है?

मनोज ने अपनी आँखें खोलीं। उसकी ओर देखा। केवल एक बार कराह कर चुप हो गया। उसकी आँखें फिर बन्द हो गईं।

वह लड़की अब कुछ-कुछ ढीठ हो गई थी। उसने दो-तीन बार उसे एक छोटी-सी लकड़ी से खोद कर जगाया। मनोज ने बार-बार आँखें खोलीं, उसे इशारे से मना किया, फिर उसकी आँखें बन्द हो गईं।

अबकी उस लड़की को एक शैतानी सूझी। उसने मनोज को

चिकोटी काटी और अन्दर भाग गई। मनोज उस चिकोटी के दर्द से कराह उठा और उसके बाद उसे उस लड़की के खिलखिलाने की आवाज सुनाई दी।

वह लड़की अब अन्दर चली गई थी। मनोज ने सोचा चलो अब जान बची। ज्वर में डूबा हुआ उसकी आँखें बन्द हो गईं। यद्यपि उसकी इच्छा होती थी कि जोर-जोर से कराहें; लेकिन डर लगता था कि कहीं जोर से कराहने पर कोई बखेड़ा न हो जाय। कोई आवे और यहाँ से निकाल दे तो कहाँ जाऊँगा? वह उसी स्थान को बहुतेरी जगहों की अपेक्षा अच्छा समझ रहा था; यदि सुविधानुसार वह वहीं रह सके।

मनोज की आँखें बन्द थीं। वह खुली जमीन पर मैले कपड़ों का एक तकिया-सा बनाकर दाहिनी करवट लेटा हुआ था। कोशिश करने पर भी उसकी आँखें नहीं खुलती थीं। उसे मालूम हो रहा था जैसे उसका शरीर ज्वर के ताप से जला जा रहा है। माथा इतना भारी मालूम होता था जैसे फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। मुँह के अन्दर जीभ भी उसे जहर की तरह कड़वी मालूम हो रही थी। मनोज उसी तरह वहाँ कितनी देर सोता रहा यह उसे मालूम नहीं। किस तरह समय बीत रहा है यह भी वह नहीं जान पाता था।

इसी समय वह लड़की फिर आई। अबकी बार उसके साथ एक लड़का था जो निकर पहने हुए था और देखने में सुन्दर मालूम होता था। लड़का उस लड़की की अपेक्षा छोटा था। लड़का रो रहा था और लड़की उसे चुप करा रही थी। अन्त में उस लड़की ने कहा—रोओ नहीं तो तुम्हें एक तमाशा दिखलावें।

लड़का तनिक चुप हुआ और लड़की की ओर देखने लगा। लड़की चुपके-चुपके दबे पाँव आगे बढ़ी और मनोज को जोर से चिकोटी काटी। मनोज एक बार काँप कर जोर से आह कर उठा। लड़की भागी और लड़का खिलखिला उठा।

औल! लड़के ने कहा। लड़की फिर दबे पाँव आगे बढ़ी और मनोज को चिकोटी काट कर भाग आई ! मनोज उसी प्रकार काँपा और कराहा। लड़का फिर खिलखिलाने लगा।

औल तमाछा! लड़के ने कहा।

उन निर्दोष बालकों को क्या मालूम कि वे क्या कर रहे हैं। मनोज उनलोगों के लिये कौतूहल और तमाशे की चीज हो रहा था। वे क्या जानते थे कि इसे कितना कष्ट है और कैसी दुरवस्था में वह पड़ा है। यदि ये गरीब भिखमंगों के साथ किसी को सहानुभूति का वर्ताव करते देखते तो शायद कुछ सीख सकते थे। उन्हें क्य मालूम कि वे क्या कर रहे थे।

लड़की का बार-बार इस तरह चिकोटी काटना मनोज को एक बारगी असह्य हो उठा। अपने को प्राणपण से रोकने पर भी वह एक बार बड़े जोर से चिड़चिड़ा कर गुर्राया। उसकी आवाज जानवरों की तरह हो रही थी। वह उसी तरह चिल्लाकर गुर्राता हुआ उस लड़की की ओर झपटा। दोनों बरामदे से बेतहाशा भागे और फटाफट दरवाजा बन्द कर दिया। मनोज की आवाज इतनी भीषण थी कि शायद वह लड़की अन्दर भी भय के मारे थरथरा रही होगी।

उन लोगों के भाग जाने पर भी मनोज की वह गुर्राहट बन्द

नहीं हुई। ऐसी आवाज उसके मुँह से आप ही आप निकल रही थी। जैसे-जैसे उसकी चेतना उस आवाज को रोकने का प्रयत्न करती वैसे-वैसे उस में परिवर्त्तन आता था। वह आवाज शीघ्र ही बन्द हो गई और वह सो गया। फिर उसे सोने में कोई बाधा नहीं हुई।

बाधा हुई शाम को। कोई आदमी चिल्लाकर उसे जगा रहा था। उसे मालूम हुआ कि कोई आदमी पैरों के जूते से उसके शरीर को हिला रहा है। उसने आँखें खोलकर देखा सूट-बूट से सज्जित कोई आदमी है। इस छोटे से मामूली मकान में रहनेवाला आदमी भी इस प्रकार का बेशकीमती विलायती सूट पहन सकता है, यह वास्तव में आश्चर्य की बात थी। मनोज को आँखें खोलते देख उसने पूछा—तुम कौन है? यहाँ क्यों सो रहा है?

मनोज समझ गया, यह घर का मालिक है। उसने गिड़गिड़ा कर कहा—बाबूजी. गरीब आदमी हूँ। मुझे बुखार लगा है।

उस आदमी की आवाज कर्कश थी! उसने कहा—बुखार लगा है तो अस्पताल में जाओ। यहाँ क्या है?

बाबूजी, चलने की ताकत नहीं है।

उस आदमी की कर्कश आवाज और भी कर्कश हो गई। बोला—अरे, तो क्या यह तुम्हारे बाबा का घर है? यहीं पड़े-पड़े मर जायगा तो मुझे भी मुसीबत में डालेगा। जा, भाग यहाँ से!

मनोज को स्थिति समझ में आ रही थी। वह दीनता से मकान मालिक की ओर देख रहा था और सोच रहा था कि किस प्रकार इनकी दया को जाग्रत करें। उस आदमी ने फिर कड़क कर कहा—अरे, सुनता है; यह शरीफ आदमी का घर है। चल यहाँ से।

अब और कोई बात बाकी नहीं बची थी। दया पाने की वहाँ कोई भी गुँजाइश नहीं थी। मनोज ने बड़ी दीनता से कहा—अच्छा सरकार, मैं अभी यहाँ से चला जाऊँगा।

उसके बाद वह पुनः लेट गया। लेटा हुआ मन ही मन अपने को वह वहाँ से उठकर चलने के लिये तैयार करने लगा। उसने मन ही मन निश्चय किया यहाँ से उठकर किसी तरह अस्पताल पहुँचना चाहिये। गरीबों का गुजारा वहीं हो सकता है। पाँच-सात मिनट में वह दृढ़ता पूर्वक वहाँ से उठ गया। अपने मैले कपड़ों को बायीं ओर बगल में दबा लिया और धीरे-धीरे वहाँ से चल पड़ा।

मनोज का ज्वर कितनी डिग्री में था इसका माप तो किसी ने नहीं लिया; लेकिन उसे बेहद ज्वर था। इस ज्वर में वह किस तरह चल सकता था वही वास्तव में एक आश्चर्यजनक बात थी। चलते-चलते उसकी चेतना लुप्त हो गई। उसे दिशा और काल का कुछ भी ज्ञान न रहा। वह कोई चीज देख भी नहीं सकता था और समझ भी नहीं सकता था। फिर भी उसकी आँखें खुली थीं और वह चल रहा था। कहाँ और किस ओर जा रहा है, यह वह कुछ भी नहीं समझ सकता था। वह चल रहा था और अस्पताल जा रहा था। इतना उसे अवश्य होश था कि बुखार लगा हुआ है और वह चल रहा है। धीरे-धीरे उसकी वह संज्ञा भी लुप्त होने लगी। वह कुछ भी नहीं जान पाता था, उसे कुछ भी ज्ञान नहीं था। फिर भी उसकी आँखें खुली हुई थीं। वह सामने की ओर देख सकता था और धीरे-धीरे पैर उठाता हुआ चल रहा था।

शहर की चहल-पहल में कोई कमी नहीं थी। दूकानों में बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं। लोग खरीद-फरोख्त कर रहे थे। मनोज को तनिक भी होश नहीं था और वह किधर जा रहा था इसका भी उसे कोई ज्ञान नहीं था।

दूसरे दिन सवेरे उसकी चेतना लौटी। देखा कि वह एक छोटे-से घर के दरवाजे पर सो गया था। एक खूबसूरत औरत उसे हिला कर जगा रही थी—अरे तू यहाँ कौन सोया हुआ है ? उठ, उठ !

मनोज उसकी ओर देखने लगा। उसकी आँखें बड़े कष्ट से खुली थीं और लाल टेसू हो रही थीं। उस औरत को कुछ सन्देह-सा हुआ। उसने उसके ललाट पर हाथ रखा और बोल उठी—खुदा कसम, तुम्हें तो बहुत बुखार है !

मनोज को बहुत ही दिनों के बाद सहानुभूति का स्वर सुनाई पड़ा था। उसका कण्ठ रुंध गया और कलेजे के अन्दर एक रुलाई घुमड़ने लगी। उसकी आँखों से आँसू बह निकले, फिर भी उसने पोंछने का प्रयत्न नहीं किया। यह एकटक उस औरत की ओर देख रहा था कि कहीं यह सपना तो नहीं है।

वह औरत सचमुच खूबसूरत थी। उसके शरीर पर हरे रंग की रेशमी साड़ी थी और कान में सोने की इयररिंग। होंठ उसके लाल थे। वह मनोज को देखती हुई बोली—अरे मैं कह रही हूँ, तुम्हें बहुत बुखार है।

मनोज ने फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं।

—::०::—

१२

वह एक वेश्या थी। गुलनार उसका नाम था। देखने-सुनने में अच्छी थी। वह गाने-बजाने आदि का विशेष खटराग न बढ़ा कर सीधे तौर पर वेश्यावृत्ति करती थी। मनोज को वही अपने घर में उठा लाई। पड़ोस के एक अधेड़ होमियोपैथ डाक्टर की दवा उसे दी जाने लगी। डाक्टर साहब रोज आकर उसे देखते थे और बड़ी दृढ़ता के साथ इस बात का आश्वासन देते थे कि घबराने की कोई बात नहीं है, इसी हफ्ते में यह ठीक हो जायगा।

डाक्टर के कहे अनुसार तो नहीं; लेकिन मनोज की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा था। पहले तो वह बहुत दिनों तक बेहोश रहा। आँखें खोल कर लोगों को देख सकता था, मगर किसी को पहचानना उसके लिये असम्भव था। धीरे-धीरे उसका ज्वर घट चला। मृत्यु की आशंका भी कम हो गई। वह लोगों को देख और पहचान सकता था। जिस दिन उसका ज्वर एक सौ एक पर आया उस दिन डाक्टर साहब ने प्रसन्नतापूर्वक उल्लास के साथ कहा—बस, अब भय की कोई बात नहीं; कल से ये ठीक हो जायँगे।

गुलनार मनोज की सेवा जी जान से किया करती थी। उसे सड़क पर कुत्तों की मौत मरने देना गुलनार को मंजूर नहीं था। अवकाश के समय आकर वह मनोज के समीप बैठती थी। स्नेह-

सिक्तकण्ठ से पूछा करती—पानी पीयोगे ? सागूदाना बना दूँ ? अंगूर खाओगे ? बेदाना मँगाऊँ ? मनोज जरूरत के अनुसार हाँ या ना बता देता। अपने जानते उसने सेवा में कोई त्रुटि न की। जैसे-जैसे मनोज के स्वास्थ्य में सुधार होता गया वैसे-वैसे वह प्रसन्न होती गई। उसे सन्तोष होता था कि बेचारा बच गया।

उस दिन मनोज का बुखार उतर गया था। सवेरे के समय गुलनार ने आकर उससे पूछा—कैसी तबीयत है जी ?

गुलनार की आवाज में प्रसन्नता थी, अपनेपन का आभास था। इस छलकते हुए स्नेह के अन्दर कहीं भी बनावट या तकल्लुफ की कोई गुंजाइश नहीं थी।

मनोज को इस प्रश्न से कैसा तो हो आया। उसने कृतज्ञता भरी आँखें गुलनार की ओर उठाईं और सजल दृष्टि से उसकी ओर देख कर कहा—अच्छा हूँ, माँ !

इस बात से गुलनार न जाने क्यों घबरा गई। अस्तव्यस्त होकर बोली—माँ ? अरे यह क्या कहते हो जी ? तुम्हारी जातपात का भी कोई ठिकाना है ? हमलोग रंडी हैं। रंडी को भी कोई माँ बनाता है ?

फिर वह हँस पड़ी। हँसती हुई बोली—तुम बड़े बुद्धू हो। एक जवान औरत को भी माँ कहा जाता है ? जवानी ही तो हमलोगों की पूँजी है।

मनोज लजा कर चुप हो गया। शर्म से वह कट गया था कि उसने कुछ ऐसा कह दिया जिससे गुलनार असन्तुष्ट हो गई। वह जान गया था कि गुलनार वेश्या है; लेकिन उसकी वे अगाध

सेवायें तो कभी भुलाई नहीं जा सकती थीं। वह समझ नहीं पाता था कि कैसे अपनी कृतज्ञता प्रकट करे। बोला—तुमने मेरा पाखाना तक साफ किया है।

तो इससे क्या? गुलनार ने कहा—इसीसे कोई माँ हो जाती है? भंगिनें तो यही काम करती हैं, उन्हें कोई माँ कहने नहीं जाता। तुम भी अजीब हो। मुझे माँ-वा नहीं कहना। यह अच्छा नहीं लगता। जानते हो, रंडी किस बात से ज्यादा शर्माती है; यही माँ बनने से। तुम्हें जो कुछ भी माँ-वा कहने का शौक हो वह मेरी अम्मा को कहना। वह भी तो रोज तुम्हारे पास आती है। मेरा नाम गुलनार है; मुझे इसी नाम से पुकारना।

मनोज चुप हो गया। थोड़ी देर के बाद बोला—जान से ज्यादा प्यारी चीज कोई नहीं है। यह जान तुम्हारी ही दी हुई है। मैं तो अपने जानते मर ही गया था। खैर, अगर जन्म देनेवाली को माँ नहीं कह पाऊँगा तो कम से कम बहन जरूर कहूँगा।

यह कह कर मनोज ने हँसने की कोशिश की; लेकिन उसके पूर्व ही गुलनार खिलखिला पड़ी थी। हँसती हुई बोली—यह लूला तो खूब बातें करता है!

उसके बाद वह मनोज की ओर देख कर बोली—नाता-रिश्ता पीछे तय किया जायगा। पहले यह तो बतलाओ कि तुम्हारा नाम क्या है?

'मनोज', उसने कहा—लेकिन मेरी माँ मुझे मन्नू कह कर पुकारती थी।

घर कहाँ है?

फ़ुटपाथ पर !—मनोज अबकी ठीक से हँसा और ठीक से बोला। यह हाथ कहाँ गँवा आये ?

मनोज ने चुप होकर एक लम्बी सांस ली। बोला—वे भी एक दिन थे, बहन। मैं उन बातों को भूल जाना चाहता हूं।

इसी तरह उनलोगों में परिचय और अपनेपन की मात्रा बढ़ती गई। मनोज बिस्तर पर से उतर कर चल सकता था। कभी-कभी शाम को लाठी के सहारे वह इधर उधर टहल भी आता था। उसे ऐसा मालूम होता था मानों बहुत दिनों के बाद वह अपने घर में लौट आया है। वह भी इसी घर का एक प्राणी है ; शायद सदा से है। बीच में बीमार पड़ गया था, अब अच्छा हो रहा है।

उस घर में केवल दो आदमी थे ! एक गुलनार की अम्मा थी जो अपने विषय में सदा घोषित किया करती थीं कि वह बीमार हैं। गुलनार भी उसकी बीमारी को ठीक ठीक समझती थी इसी कारण उसकी बीमारी की बात सुनकर न तो कोई उत्सुकता जाहिर करती थी और न हकीम-डाक्टर को ही बुलाने का प्रयत्न करती थी। वह बातचीत में अच्छी थी; लेकिन किसी किसी वक्त वह बुरी तरह चिड़चिड़ा उठती थी और तब अपने कमरे में जाकर सो रहती थी। उसके विषय में दो ही बात कही जा सकती थी कि या तो वह बीमार रहती थी या फिर किसी कारण चिढ़कर सोई रहती थी। वह बातचीत में पुराने जमाने के रईसों की चर्चा किया करती थी। उसे इस बात का गर्व था कि राजाओं के यहाँ की शादी के अवसर पर वह हाथी पर चढ़कर बारात में नाचने गई थी। मनोज को एक बात सुनकर ताज्जुब हुआ कि बुढ़िया गुलनार की अपनी

माँ नहीं है। गुलनार को वह एक दिन पा गई थी और उसकी माँ बनकर उसे बाजार में बिठा दिया था। लेकिन अब तो कोई इस बात को कभी समझ ही नहीं सकता था कि वह गुलनार की अपनी माँ नहीं है। दोनों घुलमिल कर एक हो गई थीं। गुलनार कहाँ की है, कौन है, कैसे इस वेश्यावृति को अपना लिया है इसका मनोज को कोई पता नहीं लगा। एक दिन उसने गुलनार से इस विषय में पूछा भी, मगर उसने झिड़क दिया—तुम्हें इन बातों से क्या मतलब ? और मनोज लजाकर चुप हो गया। गुलनार सीधी-सादी औरत थी। रात को जब शृङ्गार करके बैठती थी तो बड़ी सुन्दर मालूम होती थी। रात को उसका कमरा उल्लास का क्रीड़ास्थल होता रहता था। शराब, हँसी और उच्छ्रखल आमोद का फौव्वारा छूटता रहता था। उस समय वह दिनवाली गुलनार नहीं मालूम होती थी। मालूम होता था कि इसने हँसने, नाचने और शराब पीकर जिस-तिस के गले में चिमट जाने के लिये ही जन्म लिया है। कभी-कभी वह उसके कमरे में जाता था; लेकिन वहाँ के दृश्य से मनोज को बड़ी घृणा होती थी। उस समय यह विश्वास करना ही कठिन हो जाता था कि यह वही गुलनार है जो दिन के समय सीधी-सादी और भली औरत मालूम होती है। कभी-कभी वह घृणा के मारे गुलनार को कह देता—कोई दूसरा काम क्यों नहीं करती ? गुलनार उसे झिड़ककर जवाब देती—तुम तो हो बौड़म; मेरे लिये और क्या पेशा है ? अल्लाहपाक ने मुझे जहाँ लाकर खड़ा किया है मुझे तो उसी को निबाहना है। मैं और कहाँ जा सकती हूँ, क्या कर सकती हूँ ?

लेकिन धीरे-धीरे मनोज वहाँ से अभ्यस्त हो गया। उसे किसी बात की कोई शिकायत नहीं रही। वह उस घर का एक ऐसा प्राणी हो गया था जिसका किसीसे भी कोई कम अधिकार नहीं था। गुलनार ने उसके लिये रेशमी खलीता सिलवा दिया था। उसके ऊपर वह मखमल का एक वेस्टकोट पहनता था। दुपलिया टोपी, शान्तिपुरी धोती और पम्प जूता पहन कर वह बिल्कुल सभ्य सम्प्रदाय का आदमी हो गया था। यद्यपि बीमारी से उठने के कारण वह दुबला था; लेकिन फिर भी चेहरे पर वैसी रुखाई नहीं थी। आइने में अपने को देख कर वह पहले की तरह चकित नहीं होता था। सिर में लगाने को गुलरोगन का तेल मिलता था और सोने के लिये बढ़िया बिछावनवाली चारपायी। गुलनार रोज उसके लिये एक पैकेट कैंची छाप सिगरेट मँगवा देती थी। मनोज कभी-कभी पान भी खा लेता; लेकिन जरदा खाने से उसको घृणा थी। शराब तो वह छूता भी नहीं था। गुलनार को भी इसके लिये समझाता कि शराब पीने से क्या फायदा; इसे छोड़ दो। गुलनार कहती, तुम नहीं जानते, अगर मैं शराब न पीऊँ, तो वैसी चुस्ती कहाँ से पा सकूँगी। शराब तो मेरी जिन्दगी के साथ लिपटी हुई है। अगर इसे छोड़ दूँ तो कल से एक पैसा भी न कमा सकूँ। यह शराब तो अब कब्र में जाकर ही छूटेगी।

मनोज अब एक आरामतलब आदमी हो गया था। दोपहर को वह मुन्नीजान के घर में जाकर उसके भड़ुओं के साथ ताश खेला करता था। कभी-कभी एक पानवाले की दूकान पर जाकर बाबू की तरह बैठता और तमाम इधर-उधर की गप्पें किया करता था। मनोज

ाकी बातचीत में घुलमिल जाता और उन्हींकी भाँति दृष्टिकोण
। कर आलोचनाओं में भाग लिया करता। मुन्नीजान अच्छा
चती है, उसकी आँखें भी बड़ी-बड़ी हैं। उसकी तरह कटीली
ंखों से देखकर मुसकिराना और किसीसे सम्भव नहीं है। जो
ऽ बार भी उसके यहाँ जाता है वह बेदाम का गुलाम हो जाता
। असगरी तो बस नाम की है। अगर आज दलाल न रहें तो
त ही बोरिया-बिस्तर समेट कर पटने से भाग जाना पड़े। जब
ने-बजाने की बात होती, तो मनोज को लूला होने का दुख होता
एक ही हाथ होने के कारण वह न तबला बजाना सीख सकता
और न सारंगी। उसे इस बात का अरमान था कि यदि
अच्छा बजा सकता तो वेश्याओं के यहाँ उसकी कद्र होती और
ो-बड़ी महफिलों में जाकर इज्जत पाने का खासा मौका हाथ
ाता। उसे एक बात की खुशी होती थी। जिस दिन गुलनार के
ँ दो आदमी आ जाते और कैरम खेलने के लिये किसी चौथे
दमी की खोज होती, तो गुलनार उसे बुला लेती थी। लोगों से
ाका परिचय अपना भाई कह कर कराती। मनोज उन लोगों को
दाव बजाता और बायें हाथ से ऐसा अच्छा कैरम खेलता कि
ग प्रसन्न हो जाते। उसका निशाना इतना चुस्त था कि जिस गोटी
स्ट्राइकर चलाता उसे बास्केट में जाना ही पड़ता। इसीलिये
ानार कहा करती थी कि मन्नू भाई मेरे पार्टनर रहेंगे। जो उसे
नता था वह कहता था—नहीं-नहीं, मन्नू भाई मेरे पार्टनर रहेंगे।

कभी-कभी दोस्तों के कहने पर गुलनार गाती भी थी। स्वयं
रमोनियम बजाकर वह अच्छा गा लेती थी। अक्सर वह सिनेमा

की सीधी-सादी गीतों को गाती थी—'मैं बन की चिड़िया बनके बन-बन बोलूँ रे !' या 'आज मुझे बन बेहद भाता !' जिस समय वह गाती रहती उस समय मनोज भी और लोगों की तरह 'वाह-वाह' कह कर दाद दिया करता था। गुलनार की अम्मा की खास हिदायत रहती थी कि सबको खुश करना ही हमारा काम है। इसमें कोई गलती नहीं होनी चाहिये। वह कहा करती थी—यहाँ लोग आनन्द-मौज के लिये आते हैं। हमें कोई भी काम ऐसा न करना चाहिये जिससे मायूसी की जरा भी झलक मिल जाय। हमेशा ग्राहकों की खुशी के जोश को भड़काते ही जाना चाहिये। इसीसे आदमी खुश होता है और इसीसे वह दुबारे भी आ सकता है। यहाँ कोई भी मायूस होने नहीं आता। एक दिन मनोज ने एक आदमी के सामने शराब पीने से इनकार कर दिया। वह आदमी नशे की मौज में था। उसने जिद पकड़ ली—तुम्हें पीना ही पड़ेगा, मन्नूभाई ! तुम्हें पीना ही पड़ेगा ! मनोज ने फिर दुबारे इनकार किया तो गुलनार ने उसे टेढ़ी आँखों से देखा। दूसरे दिन इसी बात को लेकर अम्मा बरस पड़ीं। जब तुम्हें लोगों को भड़काना ही है, तो तुम उस कमरे में गये क्यों ? तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिये था। अगर वहाँ गये थे तो तुम्हें उचित था कि तुम लोगों को खुश करते। उसके दूसरे दिन से फिर कभी शराब पीने का मौका आया तो मनोज अस्वीकार नहीं कर सका। हुजूर, सरकार, मालिक आदि कहता हुआ आजीजी दिखला कर बहुत कम पीया ; लेकिन पीया। थोड़ा पीने से भी उसे नशा चढ़ आता था और वह ऐसी-ऐसी हरकतें करता कि लोग तो लोग, खुद गुलनार भी हँसते-हँसते लोट जाती। यह मानी हुई बात थी कि

जो ग्राहक नशे में मनोज को बहकता हुआ और झूम-झूमकर कैरम खेलता हुआ देखता वह फिर दुबारे गुलनार के यहाँ अवश्य आता। गुलनार इस लाभ को अच्छी तरह समझ गई। जब कोई नया ग्राहक आता, तो उसे खुश करने के लिये वह मनोज को शराब पिला देती। फिर तो मनोज की वह बहकती हुई बातें चलतीं और कैरम खेलते-खेलते वह इस तरह झूम कर बोर्ड से सिर लड़ा देता कि लोग हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते थे। दूसरे दिन गुलनार हँस कर मनोज को रात की बात की याद दिलाती तो मनोज लजा जाता। गुलनार हँसती रहती थी और बार-बार कहती रहती थी कि तुमने ऐसे किया था, इस तरह बोल रहे थे। मनोज झुँझला कर कह उठता—तुम्हीं शैतान की गाँठ हो। सारी तुम्हारी ही कारस्तानी थी। तुम्हीं तो इतना पिला देती हो! अब मनोज उस घर का एक अनिवार्य व्यक्ति हो गया था। उसके कारण वहाँ एक नया रस का स्रोत उमड़ आया था जिसमें अपनापन था, हँसी-खुशी थी, दिलबहलाव था और सुख था। इस तरह का अपनापन और ऐसा सद्भाव मनोज को अपने जीवन में कभी नहीं मिला था, कहीं नहीं मिला था। वह इस बात की कल्पना नहीं कर सकता था कि गुलनार से भेंट हुए बिना वह कभी इतना सुख पा सकता था। उसके लिये वह जैसे स्वर्ग की एक देवी थी जिसकी अवहेलना वह कभी नहीं कर सकता था।

गुलनार का रोजगार दलाल के ऊपर विशेषरूप से निर्भर करता था। दलाल ही ग्राहक खोजकर लाते थे और जितना मिलता था उसमें से रुपया में चार आने के हिसाब से कमीशन लेते थे।

बदसूरत या ढलती हुई वेश्यायें इससे ज्यादा कमीशन दिया करती थीं। कोई-कोई तो रुपया में अठन्नी तक कमीशन में दे देती थीं। दलाल इसके जरिये अच्छी आमदनी करते थे। उनलोगों के अन्दर आदमी को भाँफने की अच्छी शक्ति थी। जो जैसा आदमी रहता उसे वैसी ही वेश्या के यहाँ जुटा दिया करते। कोशिश उनकी यही रहती थी कि जहाँ ज्यादा कमीशन मिलता वहीं ग्राहक को भिड़ा दिया करें ; मगर आदमी-आदमी में विशेषता होती है और यह बात उनलोगों से अगोचर नहीं थी। इसलिये मौका और आदमी देख कर काम किया करते थे। उस मुहल्ले में दर्जनों दलाल थे जिनका यही पेशा था। वे हमेशा सड़कों पर इधर-उधर ग्राहकों को सूँघते फिरते थे। जिसने जरा दृष्टि उठा कर ऊपर की ओर देखा कि उसके पीछे लग गये कि चलिये बाबू साहब, आपको बड़ी अच्छी रंडी के यहाँ ले चलता हूं। उसकी सूरत देख कर तबीयत तर हो जायगी, गाना सुनकर दिल खुश हो जायगा। इस तरह उसे क्रमशः सौन्दर्य, संगीत और विलासिता के प्रति आकर्षित करते हुए जहाँ-तहाँ पहुँचा ही देते थे। एक ग्राहक को ठिकाने लगा कर फिर दूसरे ग्राहक के पीछे पड़ते थे। इस तरह वे अच्छा कमा लेते थे। गुलनार के यहाँ इकराम नामका एक आदमी दलाली करता था। इकराम केवल गुलनार की ही दलाली नहीं करता था, बल्कि उसके हाथ में कितनी ही रंडियाँ थीं। बारी-बारी से वह ग्राहकों को उनके यहाँ पहुँचाता और अपना कमीशन लिया करता था। उसका एक बार का पहुँचाया हुआ आदमी यदि दुबारे अपनी तबीयत से भी जाता था, तोभी इकराम कमीशन छोड़ने वाला जीव नहीं था। हाँ, यह अवश्य था

कि दुवारे गये हुए आदमी के लिये वह रुपये में चवन्नी के बदले दुअन्नी लिया करता था। यह इकराम लालची आदमी था। पैसों के पीछे सदा जान देता फिरता था। लेकिन कमा कर भी इसे बचाना नहीं आया था। शराब पीने की इसे बुरी लत थी। जो कुछ कमाता उसे शराब और जूआ में गँवा देता था। वेश्याओं से सदा इस बात की कोशिश में लगा रहता कि वे कमीशन ज्यादा दिया करें। जो वेश्या उसे अधिक कमीशन देती थी उसी के यहाँ शिकार पहुँचाने की अधिक कोशिश किया करता था। इनदिनों कलकत्ते से उठ कर एक नई वेश्या आई हुई थी। वह बंगालिन थी। देखने-सुनने में बड़ी अच्छी थी। उसने इकराम को फाँस लिया था। कमीशन अधिक दिया करती थी। इधर वह गुलनार से कुछ ज्यादा कमीशन की उम्मीद रखता था और गुलनार नहीं देना चाहती थी। इस कारण अब वह गुलनार की ओर कम ध्यान देता था और मालदार। आसामी उसी बंगालिन के पंजे में पड़ते थे। गुलनार को इससे ईर्ष्या होती थी और वह इकराम से इस बात के लिये झगड़ा करती थी कि अब तुम गाहकों को यहाँ लाने का ध्यान नहीं करते। इकराम खुलकर कमीशन के बारे में कुछ नहीं कहता था। रोज हाँ-हूँ कह कर निकल जाता। कहता, अब आज से पूरा ध्यान रखूँगा, पूरी कोशिश करूँगा; मगर करता-वरता कुछ भी नहीं था। इकराम जानता था कि कमीशन बढ़ाने की बात गुलनार सुनेगी नहीं। यदि साफ-साफ खुल कर कहूँ तो कोई दूसरा दलाल रख लेगी। इससे यही अच्छा था कि बुत्ता देकर अपना काम निकालते चले जायँ। गुलनार रोज उसे हिदायत करती,

समझाती ; लेकिन इसका कोई असर नहीं होता। यहाँ तक कि गुलनार की रात खाली गुजरने लगीं। कोई भूला-भटका अपनी तबीयत से आ गया तो आ गया और नहीं तो योंही रहना पड़ता था। एक दिन मनोज ने गुलनार से कहा—तुम इकराम को साफ जवाब क्यों नहीं दे देती। ऐसा बेईमान आदमी तो मैंने कहीं नहीं देखा।

गुलनार ने कहा—वह साफ-साफ कुछ कहता ही नहीं है कमीशन तो मैं उसका कभी नहीं रोकती। उधार-पधार मैंने आजतक नहीं किया। वह उसी बंगालिन के पीछे दीवाना है।

मनोज दिन भर उस मुहल्ले में घूमता था। सब किसीसे दोस्ती हो गई थी। उसने गुलनार को एक नई खबर सुनाई—सुना है कलकत्ते से दो-तीन बंगालिनें और आ रही हैं।

गुलनार उदास होकर बोली—तब तो दूसरे दलाल भी उधर ही लपकेंगे। वे कमीशन भी ज्यादा देती हैं। इकराम के सिवा कोई अच्छा दलाल मेरी निगाह में है भी नहीं। बड़ी मुश्किल है।

मनोज उसकी कठिनाई को समझ रहा था। बोला—घबराने की कोई बात नहीं ; मैं जो हूँ। आज इकराम आवे तो उसे चलता कर दो। मैं इतना भी नहीं कर सकूँगा तो और करूँगा क्या ?

गुलनार ने प्रसन्न होकर उसकी ओर देखा और बोली—तुम सकोगे ?

मनोज ने उत्साहपूर्वक कहा—क्यों नहीं सकूँगा ; जरूर सकूँगा।

गुलनार को अभी भी सन्देह था। बोली—तुम्हारे लिये यह नया काम है।

मनोज का उत्साह जैसा का तैसा ही बना रहा। बोला—तुम इतने दिनों से मुझे देख रही हो फिर भी मुझे पहचान नहीं पाई। मैं जिस काम को करता हूँ दिल लगा कर करता हूँ।

गुलनार ने उसे इस काम के अयोग्य नहीं समझा; लेकिन जब तक उसका काम देख नहीं लेती तब तक सन्देह का बना रहना वाजिब था। उसने कहा—खैर, तुम कोशिश करो; लेकिन इकराम को मैं आज ही जवाब नहीं दे सकूँगी। कहीं उसे जवाब दे दिया और तुम भी कुछ नहीं कर सके तो बड़ी आफत में पड़ूँगी।

मनोज राजी हो गया। शाम का वक्त उसका बेकार ही बीतता था। कैसे शिकार फाँसा जाता है यह उसे सीखना नहीं था। इस मुहल्ले में रहते हुए वह पक्का काइयाँ हो गया था। शाम को उसने कानों में इत्र का फाहा लगाया, गालों के नीचे पान की गिलौरी दबाई और अपने एक मात्र बायें हाथ में बेला का गजरा लपेट कर शिकार की ताक में इधर-उधर घूमने लगा।

—:o:—

१३

मनोज को दलाली के काम में अच्छी सफलता मिली। काम भी सब जाना-बूझा था। खुशामद और मीठी बोली ही इस रोजगार की पूँजी थी। मनोज भी इसमें दक्ष हो गया था। गुलनार की आमदनी पहले से चौगुनी-पचगुनी हो गई थी। इफरात पैसे आ रहे थे। पहले कमीशन के पैसे हाथ से निकल जाते थे वह भी बच रहा था। गुलनार को मनोज ने ताकीद कर दी थी कि गपशप में ज्यादा वक्त न बिताया करे। जो आवें उन्हें शीघ्र ही चलता कर दे। फिर भी गुलनार के यहाँ आनेवाले अधिक थे। अब मनोज ही गुलनार पर रोब गाँठता था—तुम तो बस वैसी ही रह गईं; लोगों को लौटा देना पड़ता है।

एक दिन गुलनार ने कहा—तो दूसरी रंडियों के यहाँ उन्हें क्यों नहीं ले जाते। कुछ कमीशन निकल आता।

लेकिन मनोज इसे अपनी हीनता समझता था। उसकी प्रीति केवल गुलनार से थी। उसके लिये काम करने को वह अपना काम समझता था। दूसरों के लिये वह क्यों मरे। उसने कहा—यह मुझसे नहीं होने का। दूसरी रंडियाँ मुझसे बराबर कहती हैं; लेकिन मैं और किसीके लिये काम नहीं करूंगा।

इस पर अम्मा ने एक सुझाव पेश किया और कहा—दूसरी

एक छोकरी को कहीं से बुलाकर यहाँ इसी घर में रख लिया जाय। इससे आमदनी दुगनी हो जायगी।

यह प्रस्ताव सबको जँच गया। गुलनार ने प्रसन्न होकर कहा—ठीक तो है; किसी को यहाँ तलब देकर बुलाया जाय।

मनोज उत्साहित होकर बोला—मैंने ऐसी हिकमत सीखी है कि एक तो क्या तीन-तीन रंडियाँ यहाँ लाने पर उनका सौदा कर सकूँगा।

मनोज उन दिनों बड़ी हिकमत से काम लेता था। पुराना फैशन त्याग कर अब वह कोट कमीज पहनता था। शाम को सीटी से बस पर बैठ कर बाँकीपुर पहुँचता था और मन-चलों की ताक में लगा रहता था। घर भी उसने बदल दिया था। वे लोग अब एक बंगलानुमा घर में रहते थे। किराया उसका अधिक लगता था, फिर भी वह अच्छा मकान था। गुलनार को अब सज-सँवर कर कोठे पर बैठना नहीं पड़ता था। वह एक भली महिला की भाँति रहती थी। उसी तरह का गहना पहनती थी। मनोज जिन लोगों को फँसाता उनलोगों के आगे गुलनार की बड़ी तारीफ करता। किसी के सन्देह करने पर कहता—भला हुजूर, आप उसकी तस्वीर देख लें; मेरी जेब में है। वह मेरी बहन है। और जब लोगों को फाँस फूँस कर घर लाता, तो गुलनार को दिखला कर कहता—देखिये, हूजूर, वही मेरी बहन है; इसमें क्या खराबी है। ऐसी सुन्दर औरत बहुत कम देखने में आती हैं। गुलनार आनेवाले सभी लोगों को मुसकिरा कर आदाब करती, पान खिलाती। सभी वहाँ बैठ जाते और गपशप चलने लगता। मनोज इसी समय चुपके से वहाँ से उठ कर खिसक जाता

और फिर मनचलों की टोह में बाँकीपुर या महेन्द्रू में पटना कालेज और साइन्स कालेज के आस पास चक्कर काटा करता। जबतक दुबारे लोगों को लेकर पहुँचता था तबतक पहले के लोग चले गये होते थे। यदि नहीं गये होते थे तो मनोज उनलोगों को अलग कमरे में बिठा देता और कहता—मेरी बहन के रिश्तेदार लोग आ गये हैं। अभी शीघ्र ही चले जायँगे।

आदमी पतन की किस सीमा तक पहुँच सकता है मनोज इसका एक उदाहरण था। इससे उसकी आत्मा को पीड़ा-वीड़ा कुछ भी नहीं होती थी। वह जानता था कि इसके सिवा वह और कर ही क्या सकता है। यह काम उसे बिल्कुल बुरा नहीं मालूम होता था। जब पैसों के लिये आदमी का इतना रोना-कल्पना है, तो भीख माँगकर जीने की अपेक्षा तो यह अत्यन्त श्रेयस्कर काम है। उसने कभी अनुमान भी नहीं किया कि वह इस काम को छोड़ सकेगा। जिस समय उसे किसी बेहूदे या उजड्ड की खुशामद करनी पड़ती थी उस समय उसे नागवार अवश्य गुजरता था। वह इसलिये नहीं कि उसका काम खराब है, बल्कि इसलिये कि यह आदमी कितना कम्बख्त या कैसा बेहूदा है।

एक दिन वह दो विचित्र आदमियों के फेर में पड़ गया। वे लोग बड़े रईस मालूम होते थे। उनमें एक दुबला-पतला और लम्बा आदमी था। उसके शरीर का रँग साँवला था। दूसरा गोरा और नाटा आदमी था। यह वैसा दुबला नहीं था। मूँछें इसकी छुटी थीं और यह कुछ कम बोलता था। दूसरा आदमी इतना बातूनी था जिसका हद नहीं। उसने गुलनार को बगल में बैठा कर पेग पर

पेग ढालना शुरू किया और नशे में बुत्त होकर मनोज से पूछ बैठा—आज की हिन्दुस्तान की परिस्थिति पर तुम्हारा क्या विचार है ?

मनोज हक्का-बक्का होकर उसकी ओर देखने लगा। उसका साथी हँस उठा। मनोज ने ऐसा प्रश्न कभी नहीं सुना था। इसका जवाब भी उसके पास कुछ नहीं था। जो कुछ वह जानता था उसे कहने की अपेक्षा न कहना ही कहीं अच्छा था। सोच-समझकर बोला—हुजूर लोगों के आगे मेरा क्या विचार। मेरा अच्छा ही विचार है।

उसने हाथ हिला कर कहा—हिश ! तुम्हारा कोई विचार नहीं है। अभी और दो-तीन गिलास शराब पीयो तब विचार पै.ा होगा। तब तुम कहोगे कि शराब पीना बुरी बात है।

उसकी बात सुन-सुनकर उसका साथी हँस रहा था। मनोज ने छुट्टी चाही और वहाँ से खिसकने को हुआ; लेकिन उस दुबले आदमी ने जबरदस्ती उसका हाथ पकड़कर उसे बैठा लिया और बोला—सुनो, बैठो अभी; अभी यहाँ से कोई नहीं जा सकता है। देखो, मेरा विचार सुनो; यह हिन्दुस्तान है न। यहाँ गंगा-यमुना इस देश की यज्ञोपवीत के समान बह रही है। काँग्रेसवाले कहते हैं यहाँ शराब पीना नहीं चाहिये। काँग्रेसवालों का त्याग कितना बड़ा है। मेरा सिर...हाँ, मेरे समान रईस का सिर वहाँ के एक-एक स्वयंसेवक के सामने झुक सकता है। लेकिन मैं पापी हूँ। उनकी बात नहीं मानता। मैं यहाँ आकर शराब पीता हूँ।

उस गोरे आदमी ने चिढ़कर कहा—काँग्रेसवाले ही कौन दूध

के धोये हैं। वहाँ भी तो पचास तरह के लोग हैं। सब तो अच्छे हैं नहीं।

उस दुबले आदमी ने, जिसका नाम दीनानाथ था, कहा—सुनो गुरु, तुम काँग्रेस की शिकायत नहीं कर सकते। काँग्रेस की एक-एक बात सही है, दुरुस्त है, वाजिब है। सब अपने-अपने स्वार्थ से काँग्रेस को गालियाँ सुनाते हैं। इन स्वार्थों से ऊपर जो महात्मा-गांधी है वह तो ठीक है। मैं उसका बड़ा भारी भक्त हूँ। उसकी एक-एक बात जादू की लकड़ी है। लेकिन अफसोस, मैं पापी हूँ और बहुत बड़ा पापी हूँ। मैं न चर्खा चलाता हूँ और न शराब छोड़ता हूँ।

मनोज अब तक शराब पीने में एक नम्बर का खुर्राट हो चुका था। जब तक बहुत अधिक मात्रा नहीं पी जाता तब तक उसे वैसा नशा नहीं आता था। पहले की तरह चिल्लू में उल्लू हो जाना सपने की बात हो गई थी। गिलास उठाता था और सारी की सारी शराब एक ही साँस में पी जाता था। अभी उसने एक गिलास चढ़ा ली और मुँह को कड़ुआ बनाकर उसे रुमाल से पोंछते हुए कहा—तो हुजूर, छोड़ ही क्यों नहीं देते?

दीनानाथ पर उत्तरोत्तर रंग चढ़ रहा था। झूमकर बोला—मैं छोड़ नहीं सकता और काँग्रेस की भक्ति भी नहीं छोड़ सकता। मैं महात्मा गांधी का बहुत बड़ा भक्त हूँ। गांधीजी का भक्त इसलिये हूँ कि उनकी सारी बातें वाजिब और मानने के लायक होती हैं। मैं और किसी का भक्त नहीं। उसीने देश की गरीबी को समझा है, उसीने देश की मनोवृत्ति को समझा है और उसीके द्वारा

देश का उद्धार होगा। काँग्रेस के नेताओं के अन्दर तो दलबन्दियाँ हैं, जी। लोग सच्चे और साफ दिल से इसलिये काम नहीं करते कि हमें एक विदेशी शासन से मुकाबला करना है बल्कि इसलिये कि उन्हें पोजीशन पाना है। इसलिये मैं बहुत कम आदमियों को पोजीशन देता हूँ। मैं सिर्फ महात्मा गांधी का भक्त हूँ।

इसके बाद उन्होंने बोतल से शराब उड़ेली और गिलास को मुँह से लगाने के पहले जोर से चिल्ला उठे—बोलो महात्मा गांधी की जय!

इसपर सब कोई ठठाकर हँस पड़े। दीनानाथ ने शराब पीकर बेतरह झूमते हुए कहा—आपलोग हँसते हैं! इसीलिये हँसते हैं कि मैं पतित हूं। मैं महात्मा जी का भक्त होकर भी हाकिम-हुक्कामों की खुशामद करता, उन्हें डालियाँ भेजता हूँ। पार्टी देता हूँ। पुलिस वाले भी मुझ से इज्जत और पैसे पाते हैं। जिनकी मदद होनी चाहिये उन्हीं पर मैं जुल्म करता हूं। छिः मैं दिखाने को विदेशी कपड़ा पहनता हूँ कि कहीं हाकिमों की नजर पर चढ़ न जाऊँ। मैं शराब पीता हूं। हाय-हाय, मैं बड़ा पतित हूँ।

उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह जोर से रोने लगा—महात्मा गांधी सबको शराब पीने के लिये मना करते हैं और मैं पीता हूँ। भगवान जानता है मैं पीना नहीं चाहता; लेकिन सालों ने मुझे आदत डलवा दी है। मैं शराब देखकर अपने को रोक ही नहीं सकता। मैं बड़ा नीच हूं दुरात्मा हूँ!

उसने अपनी छाती पीट ली और रोता हुआ बोला—हमारे ही जैसे आदमी काँग्रेस का विरोध करते हैं जिनके स्वार्थ में बट्टा

लगता है। मैं अगर कांग्रेस को पाऊँ तो ठीक न समझूँ; लेकिन मैं महात्मा गांधी का भक्त हूँ। हाय महात्मा जी !......

और वे मसनद पर लुढ़क गये।

मनोज मन ही मन कुढ़ रहा था। ऐसे-ऐसे कम्बख्त किधर से आ मरते हैं। उसने दीनानाथ के साथी से कहा— गौरी बाबू, ये तो नशे में आ गये आपको बड़ी तकलीफ हुई।

उन्होंने सिर हिलाकर कहा—नहीं, कोई तकलीफ नहीं; इन्हें ऐसा ही हो जाता है ! तुरत ही ये ठीक हो जायँगे।

मनोज वहाँ से सिगरेट सुलगाकर जानेवाला ही था कि दीनानाथ ने अपनी आँखें खोल दीं। चारों ओर देखकर बोले—मुझे इस घर से ले चलो; यहाँ गांधीजी की तस्वीर तक नहीं है। चलो, उठो।

गुलनार ने उन्हें उठने से रोक दिया और बोली—कल मैं उनकी तस्वीर यहाँ लगवा दूँगी। आप बैठिये।

दीनानाथ उसकी ओर गौर से देखने लगे। बोले—देवीजी, तुम भी खादी पहना करो।

गुलनार मुसकिराने लगी। बोली—बहुत अच्छा, हुजूर।

दीनानाथ ने सिर हिलाकर झूमते हुए कहा—सब समझते हैं कि मैं मजाक कर रहा हूँ। अरे होश में आदमी मजाक करता है, नशे में तो आदमी के दिल का पर्दा खुल जाता है। अभी मैं झूठ नहीं बोलता। यह मेरे दिल की आवाज है। क्यों नन्नू भाई, यह मेरे दिल की आवाज है न !

मनोज ने कहा—जरूर !

तो अपनी बहन को आज से खादी पहरनाओ। मुझे शराब पिलाओ।

वे तो इतने में ही ऐसे बहक रहे थे यदि और पी जाते तो न जाने और क्या दशा होती। गुलनार ने इस बात को समझकर कहा—अगर आप और पीजियेगा तो मैं खादी नहीं पहनूंगी।

इसके बाद उसने अपने होठ को दाँत से दबा लिया कि हँसी न आ जाय। दीनानाथ ने कहा—कुछ परवा नहीं; तुम खादी पहनो; मैं शराब नहीं पीता।

इसके बाद वे सो गये। गौरीशंकर ने उन्हें जगाया तो आँखें खोल दीं। काँग्रेस और मुस्लिम लीग आदि क्या-क्या बड़ी देर तक बकते रहे। लोग उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे और वे बके जा रहे थे। उन्होंने कुछ लीडरों की खूब हजामत बनाई, किसी को गाली दी, किसी को बहुत ही भला कहा। किसान आन्दोलन के बारे में भी एक लेकचर दिया। हिन्दू महासभा क्या गलती करती है, यह भी समझाया। रायपार्टी की कड़ी टीका की। जय-प्रकाश नारायण के बारे में कहा—वह अच्छा लड़का है, आगे चलकर तरक्की करेगा। हम उससे उम्मीदें रख सकते हैं। उनके इस उपयोगी भाषण को सुनने वाला वहाँ कोई नहीं था। मनोज खिसक गया था। गौरीशंकर और गुलनार प्रेमालाप कर रहे थे। बड़ी देर तक बकबक करने के बाद वे शान्त हुए और आश्चर्य की बात थी उनका नशा भी बहुत कुछ उतर गया था। उन्होंने गुलनार का हाथ पकड़कर अपने समीप ला बिठाया और बोले—

कभी-कभी मुझपर इस तरह का झक सवार हो जाता है। तुम घबरा तो नहीं गई थी ?

गुलनार सिर हिलाकर मुसकिराती हुई बोली—जी नहीं; बिल्कुल नहीं।

उसके दूसरे दिन दोपहर को उस के दरवाजे पर एक फिटिन खड़ी हुई और एक उन्नीस-बीस वर्ष की सुन्दरी वहाँ उतरी। वह सर्वांग-सुन्दरी थी और पीली जार्जेट की साड़ी उसके शरीर पर बड़ी अच्छी लगती थी। वह बनारस से आई थी। गुलनार की अम्मा ने खत लिखकर साठ रुपये वेतन पर अपनी सखी के द्वारा उसे मँगाया था। उसका नाम था केतकी।

केतकी बड़ी चंचल थी। उसके अंग-अंग में चंचलता मानों कूट-कूटकर भरी थी। फैशन भी वह हद से ज्यादा करती थी। बात-बात पर हँसती, बातबात पर शोख हो जाती। उसके होठ बड़े पतले थे, मुँह जरा चौड़ा था। हँसते समय गालों पर गढे पड़ जाते थे और मुँह के अन्दर के मसूड़े भी दिखलाई देते थे। उसके सिर के केश असाधारण रूप से बड़े थे जिसकी दो वेणियाँ उसके पीठ पर सदा झूलती रहतीं। उसे अपने केश का गर्व था।

केतकी के आने से उस घर के भाग्य और भी खुल गये। आमदनी पहले से और भी ज्यादा बढ़ गई। घर भर में उसकी कद्र थी। अम्मा उसकी खातिर रखतीं, गुलनार भी उसकी दिल जोई करती। मनोज तो उसके लिये बड़े उत्साह से काम करता था, उसकी छोटी से छोटी बातों में दिलचस्पी लेता था। उसने उसके साथ अपना सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। इस बात पर किसीको कोई

आश्चर्य नहीं था। उस काजल की कोठरी (शायद मुहल्ला ही!) में रहकर कालिख से बेदाग रहना ही सब से अचरज की बात थी। दुख था तो केवल गुलनार को। वह इस बात को नापसन्द करती थी। न जाने वह मनोज से क्या चाहती थी यह उसने कभी व्यक्त नहीं किया; लेकिन इतना जरूर था कि वह उसकी इस हरकत को पसन्द नहीं करती थी। फिर भी खुलकर कुछ कभी नहीं बोली कि तुम दिनभर केतकी के साथ क्यों पड़े रहते हो। अम्मा को इसमें आपत्ति नहीं थी। वह कहती थी कि घर का आदमी है तो कहाँ जायगा। इसके अन्दर-अन्दर एक बात और थी। बुढ़िया का अनुमान था अगर केतकी मनोज के साथ घुलमिल कर एक हो गई, तो ये जो सब खर्च के अलावा उसे साठ रुपये माहवार दिये जाते हैं वह बच जाया करेगा।

मनोज अपनी पुरानी बातों को प्रायः भूल गया था। अपने सुख पर उसे गर्व होता था और वह शान से रहता था। अब कभी कोई भिखमँगा उसके सामने रोटी या पैसे के लिये गिड़गिड़ाता तो वह उसे बुरी तरह झाड़ देता था। वह दिनभर केतकी के साथ आमोद-प्रमोद करता था। कभी उसके लिए नई बनारसी साड़ी खरीदकर लाता, कभी बढ़िया पाउडर और सेन्ट की शीशियाँ। कमरे में केतकी को बैठा कर उसके जूड़ों से खेलता रहता और न जाने कितना गपशप करता। दोपहर को केतकी प्रेम रस की भी खूब दिलचस्प कहानियाँ पढ़-पढ़ कर सुनाया करती थी। यदि उस समय कभी गुलनार या अम्मा केतकी को बुला लेती तो उसे चोट लग जाती। ऐसा मालूम होता जैसे किसीने शेर के मुँह से शिकार छीन लिया हो।

घर का भोजन गुलनार बनाती थी। एक मुसलमानिन विधवा थी जो इस काम में सहायता देती थी। सच पूछिये तो बनाती भी नहीं थी; लेकिन सबको परसना और खिलाना गुलनार के जिम्मे ही था। इधर न जाने क्यों बनाने-खिलाने के काम से वह अन्यमनस्क-सी रहती थी। उसका मन नहीं लगता था। उस दिन उसने केतकी को कहला भेजा कि आज मेरी तबीयत खराब है, आज का खाना तुम्हीं पकाओ।

केतकी तो उठकर चली गई; लेकिन मनोज इसे बरदाश्त नहीं कर सका। वह गुलनार के पास जाकर बोला—क्या सचमुच तुम्हारी तबीयत खराब है?

गुलनार लेटी थी, उठकर बैठ गई और जलती हुई आवाज में जवाब दिया—और नहीं तो क्या बहाना कर रही हूँ।

मनोज ने कहा—तुम तो जलती हो कि केतकी के पास मैं क्यों बैठा रहता हूँ।

गुलनार मनोज से किसी दूसरी बात की आशा कर रही थी। यह बात उसे सब से कड़ी लगी। चिढ़कर जवाब दिया—तुम से जलती तो उसी दिन उस घर के दरवाजे पर तुम्हें छोड़ देती। फिर तुम चाहे जहाँ जाते।

मनोज ने कहा—मैं जानता हूँ कि तुमने मेरी जान बचाई है, आदमी बनाया है; लेकिन उसका बदला भी मैंने बहुत दिया है। आज जो कुछ शान शौकत है वह मेरी बदौलत है।

गुलनार ने तीखी नजरों से उसे देखा और चिल्ला कर बोली—अहसान फरामोश कहीं के। तुम अभी मेरे कमरे

से बाहर निकल जाओ। मैं तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहती।

मनोज इसका कोई जवाब न देकर तेजी के साथ अपने कमरे में चला गया और वहाँ बिस्तर पर लेटकर जोर-जोर से साँस लेने लगा। यह कैसी बात हो रही है? माना कि गुलनार ने मेरी जान बचाई है; लेकिन उसे इस तरह अपमान करने का क्या हक है? मैंने सदा उसकी इज्जत की, हमेशा उसका कहा माना। कभी मैंने कोई बात नहीं उठाई। दूसरा होता तो कमीशन की एक-एक पाई रखवा लेता। मैंने धेला भी नहीं लिया। आज जितने रुपये हैं सब गुलनार के नाम से बंक में जमा हैं। एक हजार से ऊपर रुपये हैं। वे किसकी कमाई? किसके द्वारा वह इतना रुपया बटोर पाई है?

उसका मन जहर से भर गया था। जहाँ उसे मालिक होकर रहना चाहता था वहीं उसे इतने कड़े अपमान का सामना करना पड़ा। जिस मनोज को एक दिन रैलगाड़ी के क्रू बेरहमी से ठोकर मारते थे और वह खुशी-खुशी सहता था आज वही मनोज गुलनार की बात से इतना अधिक बेचैन था जिसका ठिकाना नहीं। उसने उत्तेजना में वहीं पर तय किया कि यहाँ रहना ठीक नहीं। वह गुलनार को दिखला देगा कि तुम्हारा पल्ला छोड़कर भी मैं आजाद हूँ, चैन से हूँ, वह साइकिल लेकर वहाँ से निकल गया। सारी दोपहरी इधर-उधर का चक्कर मारने पर भी वह तय नहीं कर सका कि वह जायगा तो कहाँ जायगा, करेगा तो क्या करेगा। असल में वह किसी काम के लायक भी नहीं था। अपने को वह अब

एक इज्जतदार आदमी समझने लगा था। परिश्रम के किसी काम को बेइज्जती समझता था। उसकी जेब में इस समय भी करीब चालीस रुपये थे, मगर इतनी रकम से दुनिया में क्या हो सकता है ? वह तो रोज आठ-दस आने चाय और शर्बत में ही खर्च कर डालता था। सिगरेट सदा अच्छी पीता। शराब और पान की भी उसे लत थी। रोजाना अकेले उसी के तन पर चार-पाँच रुपयों का खर्च था। वह कहाँ से आवेगा ? कैसे वह क्या करेगा ? वह इधर-उधर का चक्कर काटता रहा। उसका हृदय जल रहा था। आखिर रात को वह थक गया और लौटकर वहीं पहुँच गया। साइकिल बाहर बरामदे में ओठँगा दी और जाकर अपने कमरे में सो गया।



१४

दूसरे दिन सबेरे गुलनार उठकर मनोज के कमरे में गई। आज वह सबेरे ही सोकर उठा था और बैठा-बैठा एक मासिक पत्रिका के पन्ने उलट रहा था। उसने गुलनार को देखकर मुँह फेर लिया। वह उससे बात करना नहीं चाहता था। गुलनार के चेहरे पर भी हल्की-सी एक गम्भीरता थी। उसने कहा—मन्नू भाई, कल तुम काम पर क्यों नहीं गये?

मनोज ने उसकी ओर देखा और झूठ मूठ एक अँगड़ाई लेकर कहा—नहीं जा सका; मेरी तबीयत कल ठीक नहीं थी।

गुलनार आगे बढ़ आई और चारपायी पर उसीके समीप बैठ गई और पूछा—क्या हुआ था?

गुलनार के होठों पर एक मुसकिराहट चली आ रही थी जिसे उसने होठों को बरजोरी सिकोड़कर रोका।

मनोज ने दीवार की ओर देखते हुए कहा—कल मेरे सिर में दर्द था।

फिर गुलनार की ओर देखता हुआ बोला—लेकिन मेरे न जाने से भी तो कोई हर्ज नहीं हुआ। रात मैं ग्यारह बजे लौटा था। लोग आये ही थे। उस समय तुमलोगों के कमरे की बत्तियाँ जल रही थीं। केतकी गीत गा रही थी, तुम ताश खेल रही थी।

गुलनार ने कहा—आदमी के आने से क्या होता है। इन

आप ही आप आ जाने वालों का कोई ठिकाना नहीं। कल आये थे, आज नहीं आवेंगे। लाने के लिये कोशिश तो रखनी ही पड़ेगी।

मनोज को अपने काम के प्रति जो दिलचस्पी थी उसे छिपा नहीं सका। पूछा—कल कौन लोग आये थे ? नये आदमी थे ?

गुलनार ने उपेक्षा पूर्वक कहा—एक नया था बाकी सब पुराने थे।

फिर वह बात बदल कर मुसकिराती हुई बोली—कल तुम मेरी बात से चिढ़ गये थे—क्यों ?

मनोज ने झेंपते हुए कहा—हाँ, चोट तो जरूर लगी थी।

गुलनार ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—मन्नू भाई, तुम कैसे जानोगे कि तुम्हारे लिये मेरे मन में क्या है। कभी किसी समय मेरा एक भाई था। वह मेरे साथ जुड़वां पैदा हुआ था। जब मैं सोलह वर्ष की हुई तो वह मर गया। उस समय मैं ससुराल में थी। उसकी बीमारी में मैं जा भी नहीं पाई थी। उसके मरने से मैं कितना रोई थी। उसके बाद से जब से तुम्हें देखती हूँ तब से मेरे मन में वही मेरा भाई जाग जाता है। क्या तुम इस रंडी की बात का विश्वास करते हो ?

आज गुलनार की आँखों के कोने में आँसू झलक आये। मनोज ने कभी भी आजतक गुलनार के आँसू नहीं देखे थे। उसका हृदय द्रवित हो उठा। उसने रूँधे हुए कण्ठ से कहा—मैंने तो हमेशा तुम्हारी बातों का विश्वास किया है।

गुलनार बोली—तो तुम ऐसे मत बनो। केतकी के पीछे मत पड़ो। एक तो जिन्दगी खराब हो ही चुकी है दूसरे तुम उसे और भी

खराब कर लोगे। कहीं कोई अच्छी-सी एक लड़की तलाश करके शादी कर लो। हमलोगों से अलग रहो, खुश रहो, मैं यही चाहती हूँ।

गुलनार चुप हुई, एक लम्बी साँस लेकर फिर बोली—गंगा की लहरों को पकड़ने की कोशिश मत करो। वह तुम्हारी मुट्ठी में नहीं आवेगी।

लेकिन केतकी तो मुझ से कभी कुछ नहीं माँगती?—मनोज ने उसकी ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा।

कुछ माँगे या न माँगे यह मैं नहीं जानती; वह मुझे पसन्द नहीं है। वह किसी रईस की रखेली होगी या इसी तरह तमाम जवानी गुलछर्रे उड़ायेगी। मैं तुम्हारे लिये ऐसी औरत कभी पसन्द नहीं करती।

मनोज गम्भीर हो गया। कुछ सोचने लगा। वह क्या कहे, क्या न कहे, कुछ भी समझ नहीं सका।

गुलनार ने कहा—केतकी कुछ नहीं माँगती, यह झूठ बात है। क्या उसने तुमसे यह नहीं कहा कि बंक में जो रुपये जमा होते हैं वह गुलनार के नाम से क्यों होते हैं? क्या उसने यह नहीं कहा होगा कि गुलनार को छोड़ दो और चल कर किसी दूसरी जगह रहो? जरूर कहा होगा। मैं रंडियों को जानती हूँ। मुझ से कुछ छिपा नहीं है। तुम हिन्दू हो, अगर गंगा में घुस कर कसम खाओगे तब भी मैं उसका एतबार नहीं करूँगी। बोलो, उसने ऐसा नहीं कहा है?

मनोज किसी तरह भी इनकार नहीं कर सका।

गुलनार बोलती गई—इस तरह सरे बाजार बैठ कर भी मैं दुनिया को नहीं पहचान सकूँगी, यह नहीं हो सकता। इस बाजार में जो धक्कमधुक्की होती रहती है क्या मैं उसे नहीं देखती ! मैं सब कुछ अन्दाज कर सकती हूँ। मैं जो समझती हूँ वह ठीक समझती हूँ, गलत नहीं समझती।

मनोज ने हँसकर कह—लेकिन एक बात तुम ने गलत समझा है। मुझे किसी गृहस्थ के घर की सीधी-सच्ची लड़की मिल जायगी. ऐसा तो मेरा खयाल नहीं है।

गुलनार जरा गम्भीर ह गई। उसने अपने को तौल कर देखा तो वह इस मामले में अवश्य आगे बढ़ गई थी। उसने सोच कर देखा—खैर, इस पर पीछे गौर करूँगी ; लेकिन यह मुझे पसन्द नहीं। केतकी खेली-खाई औरत है। तुम जैसे मर्दों को सरे बाजार चरा सकती है।

मनोज ने फिर हँस कर कहा:—अबकी तुमने फिर गलत समझा। मैं भी इतना भोलानाथ नहीं हूँ जितना तुम समझ रही हो।

गुलनार भी अबकी मुसाकरा उठी बोली—लेकिन सौ बात की एक बात है कि जिसे तुम पसन्द करो उसके साथ-साथ मेरी पसन्द भी होनी चाहिये। मैं केतकी को पसन्द नहीं करती।

और वह ठहरी नहीं, तुरत वहाँ से चली गई।

गुलनार की बातों से मनोज का दिल उसके प्रति साफ हो गया था ; लेकिन एक बात उसके मन में खटक रही थी कि केतकी को वह पसन्द क्यों नहीं करती ? जितना वह इस गुत्थी को सुलझाता था उतना ही वह उलझती जाती थी। मनोज यह अच्छी तरह

समझता था कि किसी देहाती औरत से अगर उसकी शादी भी हो गई तो भी उसका मन नहीं भरेगा। इतने दिनों तक वह सौन्दर्य के ज्वार-भाटों में डूबता-उतराता रहा, आज वह कैसे निपट अनाड़ी बन कर किसी अबोध दिहाती लड़की के साथ अपनी जिन्दगी काटेगा ? उसे तो अपनी जिन्दगी उसी बाजार में बितानी है। इस बाजार से उसे मुहब्बत हो चुकी है । सब जगह एक अपनापन का भाव मालूम होता है। किसी दूसरी जगह जाकर वह कसे रह सकेगा ? गुलनार को कैसे छोड़ेगा ? उसे तो यहीं गुजारा करना है।

और गुलनार किसी दूसरी वजहों से केतकी को नापसन्द करती थी। एक तो वह नौकर थी और पैसा देकर बुलाई गई थी। दूसरे वह मेदनीति को नापसंद करती थी। उसे मनोज से इतनी मुहब्बत हो गई थी कि वह उसे किसी तरह भी छोड़ने को राजी नहीं थी। ऐसी अवस्था में उसे भय था कि केतकी मनोज को अलग हटा देगी। किसी दूसरे घर में जाकर बैठेगी। मनोज उसकी दलाली करेगा और पैसे कमायेगा। गुलनार ने मनोज की जान बचाई थी और उसके जीवन को भी अपने मनोनुकूल गढ़ना चाहती थी। मनोज को सुखी देखना उसे सबसे अच्छा प्रतीत होता था ; लेकिन इससे भी अच्छा प्रतीत होता था उसे अपने मन के अनुकूल देखना। केतकी के कारण गुलनार की इसी भावुकता के ऊपर चोट लगती थी और वह बेचैन हो जाती थी। इसी कारण आजकल वह गम्भीर रहती थी। मनोज चाहे किसी भी औरत से आशनाई रखे ; लेकिन मनोज पहले मेरा है तब उसका। उस औरत का यह फर्ज होना चाहिये कि वह मेरी इज्जत करे, मेरी बात माने। केतकी की ओर से यद्यपि

अवज्ञा का कोई भाव नहीं मालूम होता था ; लेकिन फिर भी सन्देह का काँटा दिल में चुभ गया था और निरंतर गड़ता रहता था। वह नारी सम्प्रदाय के स्वभाव को अच्छी तरह पहचानती थी। वह जानती थी कि केतकी अपनी ओर से मुझे पदच्युत करने में कोई कसर नहीं रखेगी। यह उसे कभी पसन्द नहीं था। वह तो इस दिशा में स्वयँ आगे बढ़ना चाहती थी। अपनी रुचि की किसी लड़की को मनोज के सामने पेश करके कहना चाहती थी—मन्नू भाई, इसे लो ; यह अच्छी लड़की है। वैसी लड़की कोई दिखलाई ही नहीं देती थी। खोजने पर भी नहीं मिलती थी। गुलनार इसी फेर में थी कि कोई मिले तो मनोज को सौंप दूँ।

मनोज के सामने यद्यपि यह बात साफ हो चुकी थी कि गुलनार केतकी को नहीं चाहती लेकिन फिर भी उसे यकायक छोड़ना मुनासिब नहीं जान पड़ा। मगर उसके पास जाना और बैठे रहना बिल्कुल कम कर दिया था। यह कोई ऐसी बारीक बात नहीं थी जिसे केतकी न समझती हो। वह मनोज को अच्छी तरह गाँठना चाहती थी। उसके बिना केतकी को चैन नहीं मिलता था। अगर मनोज उसके पास नहीं जाता था तो वह खुद उसके समीप चली जाती थी। घंटो बैठी रहती और बात चीत करके हँसती रहती। काफी दिनों तक दिल लगाने के बाद मनोज से भी यकायक नाता तुड़ा कर गम्भीर होते नहीं बनता था। कभी कभी वह झूठ मूठ चादर ओढ़कर पड़ रहता और केतकी का यकायक चादर खींच कर मुसकिराना देखकर चिढ़ जाता। मुँह बनाकर बोलता ओह ! मुझे छोड़ो, मेरी तबीयत खराब है। केतकी भी उसी लहजे

में खिलखिला कर कहती—मैं जानती हूँ तुम अच्छे हो! मनोज मुँह फेर कर कहता—मुझे दिक न करो। केतकी उसकी आँखों से आँखे मिलाकर कहती—इतना मत बनिये सरकार; मैं सब समझती हूँ। वह हँस देती, मनोज भी मुसकिरा पड़ता। फिर पुरानी बातें चल पड़तीं। घंटो बैठे रहना, घंटों गपशप और शतरंज में समय बिताते रहना। देखते-देखते दोनों में वही पुराना मेल स्थापित हो गया। उसे केतकी में कोई दोष नजर आता नहीं था, उधर गुलनार से कुछ खुलकर कहना मुश्किल था। मनोज भरसक गुलनार से आँखें चुराता फिरता था। सामना होने पर झेंप जाता। गुलनार भी इस बात को समझती थी। बिना किसी कारण के मनोज के सामने नहीं जाती। यों मुलकात तो रोज की थी, हर वक्त की थी; लेकिन वह काम-काज की बातचीत थी। इससे न मनोज का मन भरता था न गुलनार का। दोनों के बीच में एक बहुत बड़ी खाई पड़ गई थी।

केतकी में एक बात थी। जो मन में आता उसे साफ-साफ खोल कर कह देती थी। उसने मनोज से साफ-साफ कह दिया था कि इन साठ रुपयों से उसका पेट नहीं भर सकता। उसने मनोज से यह भी कह रखा था कि वह अपने जीवन में और भी आगे बढ़ना चाहती है, तरक्की करना चाहती है। उसे गाना आता है। गुलनार की तरह वह फूहड़ नहीं है। नाचना भी वह अच्छा जानती है। किसी पारखी के हाथ में पड़े तो वह कंचन हो जाय। यश और पैसे दोनों मिलें। और वह मनोज को अपना पारखी समझती थी। उसीका सहारा लेकर वह उठना चाहती थी। वह चाहती थी कि मनोज गुलनार को छोड़ दे और मेरे साथ रहे, इसी शहर में या और कहीं। जरा रहन-

सहन अच्छा करके चारों ओर नाम की शोहरत फैला दी जाय। उसके बाद मनोज जाकर रईसों से मिले, नाच-मुजरा ठीक कर आवे। इसी तरह बड़ी लम्बी-लम्बी स्कीमें थीं जिन्हें सुनता-सुनता मनोज ऊब जाता था। वह हर बात का यही उत्तर देता—मैं गुलनार को नहीं छोड़ सकता। वह मुझे सगी बहन से भी बढ़कर प्यारी है। आज अगर वह न होती तो मैं फुटपाथ पर पड़ा-पड़ा कहीं बिलट कर मर गया होता। तुम कैसे कहती हो कि मैं गुलनार को छोड़ दूँ।

एक दिन केतकी ने कहा—तुम तो ऐसा कहते हो मानों अगर तुम गुलनार को छोड़ दो तो वह मर ही जाय!

इस बात में कैसा तीव्र उपहास का भाव छिपा हुआ था जिसे मनोज ने ठीक उसी भाव से समझा जिस भाव से केतकी ने कहा था। केतकी की यह बात उसे अच्छी नहीं लगी। बोला—मान लिया, वह न मरेगी; लेकिन मेरा तो मन नहीं मानेगा। मैं जो उसके बगैर रह नहीं सकता।

केतकी बोली—तो ऐसा कहो; और नहीं तो उसके पास अभी इतने पैसे हैं कि वह सारी जिन्दगी मौज और आराम से बिता सके।

मनोज ने कहा—मैं उसके रुपये और अपने रुपये में कोई भेद नहीं समझता। उसका जो कुछ है उस पर मेरा भी हक है।

केतकी हँस कर बोली—हक है न यह है!

केतकी ने मनोज को अपना अँगूठा दिखला दिया और बोली—अगर उन रुपयों पर तुम्हारा हक होता तो बैंक की बही में तुम्हारा भी नाम होता। आज जाकर बोलो न, कि मुझे पाँच सौ रुपयों की जरूरत है। देखूँ तो भला देती है।

मनोज ने कहा—कुछ अन्धेर है, योंही कैसे कह दूँ ?

कुछ बहाना बना कर कहो।

मनोज ने गम्भीरतापूर्वक कहा—बहाना मुझे आता है। मैं सड़क पर, बाजार में, हर जगह बहाना बना सकता हूँ। घर में मुझ से बहना बनाना नहीं आता।

केतकी ने हँस कर कहा—मानलिया न तुमने !

मनोज और भी गम्भीर होकर बोला—केतकी, तुम ऐसी बातें न किया करो।

केतकी ने मुँह बना कर कहा—ऐसी बात तुम सबके मुँह से सुनोगे जिस दिन गुलनार तुम्हें अंगूठा दिखा कर इस घर से निकाल देगी।

मनोज ने दृढ़ता पूर्वक कहा—केतकी, तुम ऐसा न कहो ; गुलनार कभी ऐसा नहीं कर सकती।

गुलनार नहीं कर सकती ; लेकिन वह खबीस बुढ़िया तो कर सकती है।

मनोज ने उसी दृढ़ता से कहा—वह भी ऐसा नहीं कर सकती।

केतकी निरंतर आगे बढ़ती ही जाती थी। बोली—तुम हो किस फेर में। यहाँ कौन किसका है। बाहर से जो हमलोगों को देखते हैं वे सबको एक समझते हैं ; मगर यह बात तो सच्ची नहीं है। वह बुढ़िया जो है सो क्या गुलनार की सचमुच की अम्मा है ? क्या तुम गुलनार के सचमुच के भाई हो ? क्या मैं तुमलोगों की सचमुच की कोई होती हूँ ? सच्ची बात है, यहाँ कोई किसीका नहीं है। जरूरत

पड़ेगी तो बुढ़िया अपनी ओर रुपया खींचेगी। उस समय तुम्हारा कहा एक ओर पड़ा रहेगा और गुलनार बुढ़िया का कहा करेगी। तुम सोचकर देखो, गुलनार किसे ज्यादा मानती है; तुम्हें या उस बुढ़िया को ? और मुझे देखो, मेरा तुम्हारे सिवा और कौन है ?

मनोज ने केतकी की ओर देखा और हँस दिया। केतकी उसकी ओर देख रही थी और मुसकिरा रही थी। उसकी आँखों में टोना था।

—o—

१५

मिट्टी के घड़े की रगड से पत्थर पर भी निशान पड़ जाता है, मनोज का दिल तो आखिर एक आदमी का दिल था। फिर भी उसमें हिम्मत नहीं थी कि केतकी को लेकर अलग हो जाए। जरा-सा अगर लाज छोड़कर काम किया जाय तो आदमी सब कुछ कर सकता है; लेकिन यही लाज मनोज से छूटती नहीं थी। वह कैसे केतकी को लेकर गुलनार से अलग हो सकेगा; कैसे उसके दरवाजे के सामने से निकलेगा ? यह उसके लिये एक अजीब बात थी जो उससे नहीं हो सकती थी। तब एक बात थी। केतकी इस बात पर जोर देती कि पटना छोड़ कर और कहीं चला जाए। उसने सुन रखा था कि टाटा नगर में वेश्याओं की अच्छी गुंजाइश है। वहाँ पैसे भी हैं, कमाई भी। मगर मनोज पटना छोड़ने के लिये राजी नहीं होता था। यहाँ हर किसी से जान-पहिचान थी, हर किसी को वह जानता था। वहाँ उसके लिये कौन मिलेगा, जाने कैसी जगह है, कैसे लोग हैं ? इसलिये वह पटना से कहीं बाहर जाने के नाम पर इनकार कर देता था। एक दिन केतकी ने उससे कहा—तुम तो ऐसा बनते हो मानो मैं कुछ जानती ही नहीं। तुम्हारे मन में तो यही है कि हम लोग जिन्दगी भर गुलनार की गुलामी करें।

मनोज ने कहा—छोड़ने को तो मैं गुलनार को आज ही छोड़ सकता हूँ; लेकिन छोड़ने की कोई वजह भी तो होनी चाहिये।

केतकी ने खीजने के ढंग पर कहा—तुमसे कुछ नहीं हो सकता। जिसे गुलामी की लत पड़ गई है वह किसी तरह भी उसे नहीं छोड़ सकता।

यह मनोज के पुरुषत्व पर एक कड़ी चोट थी। इस बात से वह तिलमिला गया। सँभल कर बोला—तो तुमने ऐसे आदमी का पल्ला पकड़ा ही क्यों?

केतकी तेजी से बोली—मेरा और कोई सहारा हो ही कैसे सकता था? सहारा कौन औरत नहीं चाहती? यहाँ कितने लोग आते हैं, सब से मैं मिलती बोलती हूँ; लेकिन क्या मेरे दिल में यह अरमान नहीं उठता कि मेरा बस एक ही सहारा होता और वह बहुत अच्छा सहारा होता। सेहत के साथ जिन्दगी बसर करती। इसीलिये तो मैंने तुम्हें पकड़ा कि किसी तरह आगे की राह बनाएं। यहाँ मुझे मिलता ही क्या है? खाने पीने और पहरने के अलावा साठ रुपये पाती हूँ। अगर इस गुलामी को छोड़ कर आजादी से मैं अपना पेशा करूँ तो क्या दो सौ से कम कमाऊँगी? यही वजह है कि मैं तुम्हारे पीछे जान देती हूँ और एक तुम हो जो सुनते ही नहीं।

गुलनार अनुभवी औरत थी। सब बात समझती थी। उसे मनोज को इस प्रपंच में पड़ने देना मंजूर नहीं था। वह उसे अपना आदमी समझती थी। वह तो इस बात को अच्छी तरह देखती थी कि आज अगर मनोज उसे लेकर अलग हो जाए तो केतकी कल दूसरा दलाल पाकर इसे धता बता देगी। उसने कितने ही लोगों का जीवन इसी तरह नष्ट होते देखा था। कुछ दिन में ऐसे दलालों के सामने कोई ऐसा सहारा नहीं बचता जहाँ सुख-चैन मिले। वे जिसकी-

तिसकी दलाली करके जैसे-तैसे अपना पेट पालते हैं। न सुख रहता है, न पास में कुछ पैसे ही रहते हैं। गुलनार कैसे चाहती कि मनोज जाकर उसी सम्प्रदाय में शमिल हो जाए। केतकी सुन्दरी और चालाक थी। जितनी आसानी से वह मनोज का पल्ला पकड़ सकती थी उतनी ही आसानी से वह उसे छोड़ भी सकती थी। हो सकता था कि मनोज की उसीके साथ कट जाय; लेकिन यह भी हो सकता था कि वह मनोज को धूल की तरह झाड़कर और किसी के पास चली जाए। कोई अचरज तो नहीं था। वहाँ खतरे की सम्भावना थी और गुलनार मनोज को इस खतरे में डालना नहीं चाहती थी। उसने मनोज को सचेत कर दिया था। इसके सिवा वह और क्या कर सकती थी?

और मनोज भी अब अजीब हो रहा था। वह गुलनार से सदा आँखें चुराता फिरता था। पहले की तरह साफ-साफ बातें किये हुए न जाने कितना समय बीत गया था। अगर गुलनार से मनोज की आँखें मिलतीं भी तो वह झेंप जाता और तुरत ही कोई बहाना निकालकर वहाँ से खिसक जाता। विचित्र हालत थी! ऐसे आदमी को गुलनार कैसे समझाए, कैसे क्या कहे! उसके दिल में आता था कि मनोज अब पराया हो रहा है, सच-मुच कहीं छोड़छाड़कर चल न दे। लेकिन वह क्या कर सकती थी। आदमी को होश तो ठोकर खाने के बाद ही होता है! लेकिन जब तक कोई ऐसा मौका नहीं आता तब तक व्यर्थ छेड़-छाड़ करने की चोई जरूरत नहीं थी। वह मनोज को ठीक-ठीक समझना चाहती थी; लेकिन समझ सकने का कोई रास्ता नहीं था। ऐसी

अवस्था में वह कर ही क्या सकती। उसने मनोज को समझा दिया था कि केतकी के फेर में न पड़ो, यह काम उसे पसन्द नहीं। और मनोज भी ऐसा जीव था जो माननेवाला नहीं था। कभी केतकी मनोज के कमरे में रहती, कभी मनोज केतकी के कमरे में हँसता-बोलता रहता। गुलनार को मनोज पर गुस्सा आता था; लेकिन जब्त कर जाती। कोई उपाय भी नहीं था। वह अपने क्रोध को न मनोज पर प्रकट कर सकती थी और न केतकी पर। इसी तरह चल रहा था। गुलनार खून का घूँट पीती थी और सब कुछ देखती थी।

धीरे-धीरे गुलनार से यह भी छिपा नहीं रहा कि मनोज मन ही मन पराया हो गया है। वह मौके की ताक में है और जरा-सा कोई अवसर पाते ही केतकी को लेकर चला जायगा। इस बात से वह जल उठी। मनोज का परिवर्तित व्यवहार ही इसका साक्षी था। गुलनार से तो वह कभी कुछ नहीं बोलता था; लेकिन मौके-बेमौके अम्मा से उलझ पड़ता था। ऐसी अवस्था में गुलनार समझ नहीं पाती थी कि वह किस का पक्ष ले या कैसे झगड़ा शान्त करे। झगड़ा तो सिर्फ बाहरी था और जो भीतर की बात थी वह गुलनार से अगोचर नहीं थी।

मनोज अब पहले से बहुत ज्यादा शौकीन हो गया था। बेदरेग पैसे खर्च करता, टिन के टिन पाँच सौ पचपन सिगरेट पीता, एक पाइन्ट ब्लैक एन्ड ह्वाइट शराब भी उसे रोजाना मिलना जरूरी था। और भी उसने पचासों तरह के खर्च बढ़ा लिए थे। केतकी के लिए एक चन्द्रहार बनाने का आर्डर भी सुनार को उसने दे

दिया था। गुलनार को इससे कम कुढ़न पैदा नहीं होती थी। पैसे वह खुद गुलनार से माँगता नहीं था। केतकी की कमाई होती थी उसीसे ले लेता। गुलनार जब केतकी से पैसा माँगती तो वह मनोज का नाम बतला देती। गुलनार चुपचाप सुनती और लौट जाती। फिर भी उसने मनोज से कुछ नहीं कहा। चन्द्रहार बनकर तैयार हुआ तो मनोज उसे लेकर गुलनार के पास पहुँचा और बोला—केतकी के लिये यह चन्द्रहार बना है; साढ़े तीन सौ रुपये चाहिए।

गुलनार के तमाम शरीर में आग लग गई, वह जल उठी। आहत आँखों से मनोज की ओर देखकर बोली—मन्नू भाई, तुम मुझे डुबा कर ही छोड़ोगे। इस नेकलेस की क्या जरूरत थी? सोने का दाम इतना चढ़ा हुआ है और तुम्हें चन्द्रहार बनवाने की सूझी है!

मनोज ने झेंपकर कहा—केतकी के गले में यह अच्छा मालूम होगा इसीलिये बनवाया था। चीज तो आखिर अपने पास ही रह जायगी।

गुलनार ने गुस्से से कहा—तुम्हें अपनी हैसियत भी देखनी चाहिये। हमारी यह हैसियत नहीं है कि सोने का हार पहनाकर केतकी को बिठाए। रोल्डगोल्ड से भी यह काम हो सकता था। हमने कभी सोने का नेकलेस पहनने की हिम्मत नहीं की।

मनोज को बात लग गई। उसे भी क्रोध चढ़ आया। तेजी से बोला—आजकल तो तुम्हारे मिजाज ही नहीं मिलते। तुम समझना चाहती हो कि मैं यहाँ कुछ नहीं हूँ। इसीलिये मैं जो कुछ करता हूँ......

गुलनार तड़पकर बोली—हाँ-हाँ, ठीक समझती हूँ, तुम यहाँ कुछ नहीं हो, कोई नहीं हो। तुम हो कौन? किस के हो? आदमी तभी तक आदमी को अपना समझता है जब तक वह भी उसे अपना समझे। लुटेरों को कोई अपना नहीं समझता।

मनोज आग बबूला हो गया—अच्छा, यही बात है तो मैं लुटेरा ही सही। मैं आज ही यहाँ से चला जाता हूँ।

गुलनार ने आँचल से चाभी का गुच्छा खोलकर जोर से जमीन पर पटक दिया और चिल्ला कर बोली—तुम कहाँ चले; लो, मैं ही यहाँ से जाती हूँ। सारी चीजों को सँभाल कर रखना।

शोर सुनकर बुढ़िया भी उस कमरे में दौड़ आई। उसने गुलनार को पकड़ लिया और बोली—यह क्या करती है बेटी। अरे होश में आ। तू कहाँ क्यों जायगी?

यह कहकर उसने मनोज को इशारा किया कि तुम कमरे के बाहर चले जाओ; लेकिन मनोज ने उसके इशारे की कोई परवा नहीं की। वह भी गुस्से में था और चाहता था कि कोई निबटरा हो जाय। आज ही इस घर में उसका अन्तिम दिन है।

बुढ़िया ने देखा कि मनोज ने उसके इशारे की कोई परवा नहीं की है, तो वह भी गुस्से में आ गई। अपने को बहुत जब्त करके बोली—तुम यहाँ से जाओ न!

मगर मनोज फिर भी बाहर नहीं गया। उसके होठ गुस्से से फड़क रहे थे। गुलनार ने अपने को बुढ़िया से छुड़ाया और जलती हुई आँखों से मनोज की ओर देखा। फिर चुपचाप वहाँ से उठी और चाबी का गुच्छा उठा लिया, बक्स को खोलकर कुछ नोट उठा

लाई और उन्हें मामूली कागज की तरह मनोज के सामने बिखेर दिया। बोली—लो, मरो, जाओ, उड़ाओ!

मनोज चुपचाप उन नोटों को उठाकर बाहर निकल गया।

गुलनार की आँखों से आँसू बह चले। वह अपने पलंग पर गिर गई जोर-जोर से रोने लगी। गुलनार को रोते किसीने आजतक नहीं देखा था, किसीने सोचा भी नहीं था; लेकिन आज वह भी रो रही थी। न जाने उसके दिल में कितनी चोट थी, कितना दर्द था। आज वह कितने जमाने के बाद रो रही थी। रोते-रोते उसकी आँखें लाल हो गई थीं और वह हिचकियाँ ले रही थी।

केतकी के गले में सोने का वह चमकदार नेकलेस पड़ गया और उसने मुसकुरा कर मनोज की ओर देखा। चाहे वेश्या हो या कुल-ललना, उनके चमकदार आभूषणों के पीछे कितना रोमांचकारी इतिहास छिपा होता है, उसकी चमक के पीछे कितना अन्धकार, कितनी पीड़ा और व्याकुलता छिपी होती है! प्रत्येक आभूषण के पीछे परिश्रम, चिन्ता, वेदना आदि का इतिहास होता है। औरतें उन्हीं आभूषणों को पहनकर चारों ओर इतराती फिरती हैं। सबको दिखलाना चाहती हैं, विस्मय और इर्ष्या के समुद्र में डालना चाहती हैं। केतकी उस नेकलेस को पाकर जितनी प्रसन्न हुई मनोज को उतना ही दुख हुआ। उसे जरा भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसने इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि बात इतनी दूर तक बढ़ जायगी। उसने सोचा था कि गुलनार जिस प्रकार निःशब्द ही सब कुछ करती जाती है उसी प्रकार नेकलेस के लिये रुपये भी निकाल कर दे देगी। साथ साथ एक बात और भी थी। यदि गुलनार न देती, तो इसमें कोई

सन्देह नहीं कि वह दूसरी वेश्याओं से उधार लेकर काम चला लेता और केतकी को ले जाकर दूसरी जगह बिठाता। उसके बाद रुपया कमाना तो बायें हाथ का खेल था। लेकिन वह तो हुआ नहीं, उल्टे गुलनार ही घर छोड़कर जाने के लिये तैयार हो गई, रुपये भी निकाल कर दे दिये और कितना रोई--उफ़!

मनोज के दिल पर इस बात का बड़ा आघात पड़ता था कि मैं ने क्या कर डाला। उसका चेहरा दुखित था और वह एकान्त में अपने को स्थिर करना चाहता था। सारे घर में स्यापा छाया हुआ था। गुलनार अपने पलंग पर पड़ी तकिया में मुँह छिपाये रो रही थी। बुढ़िया अपना गम्भीर चेहरा बनाये अपने कमरे की चौखट पर गाल पर हाथ दिये गुमसुम बैठी थी। मनोज भी अपने कमरे में सिर झुकाये बैठा था। इस समय यदि किसीको चैन नहीं था तो केतकी को। वह बार-बार आइने में अपना रूप देखती, बार बार अपने गले के नेकलेस को देखकर प्रभावित होती। उसके दिल में जैसी गुदगुदी हो रही थी, जैसा उत्साह मालूम हो रहा था वैसा ही किसी और को भी तो मालूम होना चाहिए। इसके बिना चैन कैसे पड़े! और, वह और था मनोज। केतकी उसके पास गई और भाँति-भाँति की चेष्टाएं करके बोली—अजी देखो तो, यह हार मुझे कैसा मालूम होता है?

मनोज ने सिर उठा कर उसकी ओर देखा और फिर माथा झुका लिया।

केतकी तमककर बोली—जाओ, तुम तो कुछ सुनते ही नहीं। जरा इधर भी आँखें उठाओ; देखो, मैं कैसी लगती हूँ?

मनोज ने उसे हाथ से ठेल दिया और कहा—चुड़ैल की तरह !

केतकी उसे सहती हुई बोली—मैं कैसी लगती हूँ ?

वह हाथ जोड़कर बोला—केतकी, तुम अभी यहाँ से जाओ। मेरा दिल चोट खाया हुआ है। कुछ कह दूँगा तो बात लग जायगी। जाओ यहाँ से।

इस अपमान से आहत होकर केतकी तिलमिला उठी। उसकी आँखें रोषप्रदीप्त हो उठीं। मुँह बनाकर बोली—जैसे मेरा ही सब कसूर हो। मैंने तुम्हें नेकलेस बनवाने को नहीं कहा। मैंने तुम से यह भी नहीं कहा कि इसके लिये जाकर गुलनार दीदी से झगड़ा करो। तुम तो खुद ही बखेड़ा खड़ा करते हो और कुछ पड़ता है तो मुँह फुला कर बैठ रहते हो।

वह ऐंठ कर वहां से पैर पटकती हुई चली गई। मनोज सिर झुकाये चुपचाप बैठा था, उसके हृदय में रह-रह कर मरोड़ उठती। सचमुच सारा कसूर तो उसीका है। यदि इस घर में केतकी न आई होती तो कितना अच्छा था।

इसी समय उसने आहट सुनी जैसे दो आदमी जीने पर से चढ़े आ रहे हैं। मनोज धड़फड़ा कर उठा। ये गाहक आ रहे थे। तो क्या शाम हो गई ? उसने तेजी से चलकर बैठक खाने के किवाड़ खोल दिए और आगन्तुकों को सलाम किया। स्विच दबाकर बत्तियाँ जला दीं और आगन्तुकों से निवेदन किया—बैठिये हुजूर, आज तो बहुत दिनों बाद तशरीफ लाये हैं।

दोनों बैठ गये। बोले—कुछ पान-पत्ता मँगाओ, मन्नू भाई। आज बाईजी कहाँ हैं ?

मनोज ने अस्तव्यस्तता के साथ जवाब दिया—आप लोग जब तक पान खाएं तबतक मैं उन्हें बुलाए लाता हूँ।

और वह चलकर गुलनार के कमरे में पहुँचा। कमरा अन्धेरा था। गुलनार चुपचाप वहाँ पड़ी थी। मनोज ने वहाँ की बत्ती जलाई और बोला—बाबू लोग तशरीफ लाए हैं।

गुलनार अस्तव्यस्त होकर उठती हुई बोली—लोग आ गये! चलो, मैं चलती हूँ। केतकी क्या कर रही है?

मनोज झेंपता हुआ बोला—मैं नहीं जानता।

वह लपककर केतकी के कमरे में पहुँची। वह शृङ्गार करके तैयार बैठी थी। उसके कमरे में टेबुल लैम्प जल रहा था और वह बैठकर कोई किताब पढ़ रही थी। गुलनार ने कहा—तुम अभी तक यहीं बैठी हो, वहाँ लोग आ रहे हैं। चलो। मैं आगे जाती हूँ तुम पीछे से आना।

गुलनार उस कमरे से निकलकर फिर अपने कमरे में गई। उसने जल्दी-जल्दी पाउडर लगाया, साड़ी बदली और इस तरह मुसकिराती हुई लोगों के सामने पहुँची मानों मुसकिराने के लिये ही इसकी जिन्दगी है। उसने झुक कर दोनों को सलाम किया और बोल उठी—आज तो बहुत दिनों के बाद रास्ता भूल पड़े।

उस समय कौन जान सकता था कि आज गुलनार कितना रोई है?

—:o:—

१६

कष्ट सहने की भी एक सीमा होती है। आदमी जब तक सह सकता है तब तक सह लेता है, अन्यथा उसके प्रति विद्रोह कर बैठता है। कोसी के सामने चारों ओर कष्ट का साम्राज्य दिखाई देता था; लेकिन अब वह भी चुपचाप सहने वाली औरत नहीं थी। बात का जवाब बात से देती और गालियों का जवाब गालियों से। शायद ही कोई दिन ऐसा होता होगा जिस दिन रुक्मिणी के साथ उसको सहूलियत से निभती हो। प्रायः रोज ही लड़ाई होती, रोज ही दोनों ओर से गाली-गुफ्तों का आदान-प्रदान होता। पुनाई सिंह जानते थे कि अपराध रुक्मिणी की ओर से ही रहता है, वही झगड़ा निकालती है; लेकिन फिर भी वह उसीका पक्ष लेते थे। इसका कारण था कि रुक्मिणी उनकी ब्याहता औरत थी। एक तो कुछ कहते ही वह आग हो जाती दूसरे लोग कहते कि रखेली के चलते अपनी ब्याहता स्त्री पर अत्याचार करते हैं। यह पुनाई सिंह को मंजूर नहीं था। इससे उनके खान्दानी गौरव पर धब्बा लगता था। दूसरे, एक बात और थी। अगर कोसी को ही डाँट देने से बात खत्म हो जाती तो फिर रुक्मिणी को छेड़कर क्यों रार मोल ली जाए। बात को दबा देना ही उनका फर्ज था। न्याय करने के फेर में रुक्मिणी से उलझकर अपनी पगड़ी उतरवाना उन्हें उचित नहीं जँचता था।

कोसी एक बार भाग कर पछता चुकी थी फिर भी भागने का खयाल उसे बेचैन कर देता था। वह कभी खयाल करती कि अबकी ऐसा भागूँगी कि दुनिया में कोई उसका पता भी नहीं जानेगा। कभी सोचती, शायद ऐसे ही निबह जाए। संसार के लाखों प्राणी न जाने किस अगोचर आशा का भरण-पोषण करते हुए अपना दिन काटते हैं जिसका ठिकाना नहीं। सोचते हैं कोई भी तो वक्त ऐसा आवेगा जब सुख मिलेगा। कोसी तो जैसे किसी सड़ी हुई रस्सी को पकड़ कर लटक रही थी। देखती थी कि रस्सी टूट रही है, गल रही है, तकलीफ मालूम हो रही है; लेकिन फिर भी चाहती थी कि रस्सी न टूटे तो ठीक। न जाने क्या आशा थी, क्या भरोसा था?

कोसी की गोद में एक सात-आठ महीने का बच्चा था। उसे वह लल्ला कहती थी। यह लल्ला जितना रोता नहीं था उतना हँसता था। कोसी के लिये एक वही सुख का आधार था और नहीं तो चारों ओर दुःख ही दुःख था। उसे न कभी अच्छा खाने को मिलता था, न अच्छा पहनने को। रुक्मिणी के फटे हुए कपड़ों को पहन कर दिन काटती थी। इसी तरह समय कट रहा था।

अक्सर देखा जाता है कि बच्चा होने पर औरतें अधिक उम्र की मालूम होने लगती हैं। उनमें न वह चंचलता रहती है और न वैसा सौन्दर्य ही; लेकिन इसके विपरीत कोसी का सौन्दर्य और भी निखर गया था। बच्चा होने के कारण उसके रूप में कोई कमी नहीं आई थी। वह फटे कपड़ों में भी वैसी ही निखरी हुई मालूम होती थी। यह वास्तव में एक विचित्र बात थी जिसकी चर्चा गाँव के सौन्दर्योपासक लोग बड़े उत्साह से किया करते थे। लोग कहते थे

कि उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में और भी रस आ गया है, और भी मादकता भर गई है। गाँव के कुछ रसिक लौंडे पुनाई सिंह के घर के आसपास फेरी भी दिया करते थे।

उन दिनों पुनाई सिंह के यहाँ एक अतिथि आया हुआ था। वह रिश्ते में उनका भानजा था। एक बार बहुत दिन पहले पुनाई सिंह ने अपने बहनोई से सूद पर रुपये लिये थे। अब उन रुपयों का सूद और मूल मिलाकर इतना अधिक हो गया था जिसे देने में पुनाई सिंह बिल्कुल असमर्थ थे। इसीलिये उनके बहनोई ने अपने लड़के को भेजा था कि जाकर अपने मामा से कहो कि उनके क्या इरादे हैं। देना हो तो अब दे दें और नहीं तो नालिश किसी तरह भी रोकी नहीं जा सकती। पुनाई सिंह ने कहा—देना तो मुझे है ही, जरा और सब्र कर जाते तो अच्छा था ; लेकिन खैर, सब्र करो। उसके बाद वे कुछ जमीन बेंचने के फेर में पड़ गये कि किसी तरह बेच बाच कर कुछ दे दिया जाय. फिर आगे देखा जायगा। पुनाई सिंह का वही भाजना जब पहले-पहल आँगन में आया तो कोसी को देखकर कह उठा—अरे वाह मामी !

हाँ, एक तरह से कोसी उसकी मामी ही होती थी । मामी-भानजे में दिल्लगी होती है। जब वह दिल्लगी करता था तो कोसी सकुचा जाती थी। उसके मन में एक प्रकार की गुदगुदी-सी मालूम होती। जब वह अकेले में होती हो घंटों उसकी किसी दिल्लगी वाली बात को याद करती रहती और मुसकराती रहती।

उनका नाम था दीपनारायण। उम्र कोई तीस की होगी। ऊँचा डील, चौड़ा ललाट, प्रशस्त छाती और कड़ी-कड़ी मूछें।

पढ़ा-लिखा कुछ भी नहीं था; लेकिन जमीन्दारी ठसक उसमें खूब थी। उसका बाप कंजूस था इस कारण उसे खुशी होती थी कि मेरे हाथ में कभी काफी पैसे आयेंगे। वह इसी दिन की राह देख रहा था कि कब बुड्ढा मरे और पैसे हाथ में आवें। कोसी को वह अजीब निगाहों से देखता, बात-बात में उससे मजाक करता। कोसी को उसकी बातों में रस मालूम होता था, अच्छा लगता था। उसके दिल में कोई बुरा भाव नहीं था। वह दीपनारायण को इसलिये बातचीत का मौका देती थी कि उसे अच्छा लगता था। और, साथ ही साथ एक बात और थी। यदि कोसी बातचीत का मौका न देती तो और आखिर करती क्या? घर के सभी लोग तो उसका आदर करते थे। ऐसी अवस्था में वह स्वयं नकू बनना नहीं चाहती थी।

रुक्मिणी को एक मौका लग गया। रात के समय उसने फुसफुसा कर पुनाई सिंह से कहा—एक बात जानते हो? कोसी दीपा के साथ फँस गई है।

पुनाई सिंह को कोसी से कोई वैसा मतलब था नहीं। इधर वे दीपा के कर्जदार भी थे। कुछ करना ठीक नहीं था। उधर उन्होंने सोचकर देखा कि इससे उनके खान्दान के यश पर बट्टा भी नहीं पड़ता था। घर की बात थी, घर में ही रह जायगी। पुनाई सिंह ने चुपचाप इस बात को सुन लिया और पी गये। रुक्मिणी को समझा दिया—यह सब बात किसीसे नहीं कहनी चाहिये; इससे बदनामी होती है।

मगर रुक्मिणी को बदनामी की वैसी परवा नहीं थी। उसमें पुनाई सिंह की कोई बदनामी थी भी नहीं। सारी की सारी बदनामी

तो कोसी की थी। वह कोसी को घृणित से भी घृणित देखना चाहती थी और वैसा ही समझना भी चाहती थी। यही कारण था जो उसने कोसी के सम्बन्ध में ऐसी हीन कल्पना कर ली थी। दूसरे ही दिन वह इस बात को ले उड़ी—आजकल तो दीपा के साथ खूब गुलछर्रे उड़ते हैं!

कोसी को आग लग गई। उसने चिल्लाकर प्रतिवाद किया—कौन हरामजादी ऐसा कहती है?

रुक्मिणी कूदकर आँगन में आ गई। वहीं खड़ी होकर उसने ललकारा—मैं कहती हूँ और कौन कहेगा? आ, मुझे मार! ले मैं भी यहीं खड़ी हूँ। आकर मुझे मारती क्यों नहीं!

कोसी ने दूर ही से कहा—जो जैसी होती है वह दूसरों को भी वैसा ही समझती है।

रुक्मिणी आँगन में ही खड़ी-खड़ी हाथ मटका कर बोली—अरे मैं तेरी जवानी में आग लगा दूँगी—आग। तेरी सारी भकभकी निकाल दूँगी। तू है किस बिरते पर।...ले, मैं तो यहीं खड़ी हूँ। तुझमें दम है तो आकर मार!

बात बिल्कुल असहनीय थी। कोसी को गुस्से में इसकी बिल्कुल खबर ही नहीं रही कि वह क्या कर रही है। उसने अपने बच्चे को आँगन में सुला दिया और रुक्मिणी का झोंटा पकड़कर बेतरह मारना शुरु किया। रुक्मिणी दुबली-पतली और चिड़चिड़े स्वभाव की औरत थी। इस मार का प्रतीकार नहीं कर सकी। मार खाकर वह रोने लगी और रो-रो कर सबको सहायता के लिये पुकारने लगी—अरे दौड़ो-दौड़ो, मुझे बचाओ; मेरी जान जा रही है!

फिर भी कोसी का क्रोध कम नहीं हुआ था। वह रुक्मिणी से गुथ गई थी और मारती ही जाती थी। जवाब में रुक्मिणी केवल नाखून से बकोट सकती थी। वह रो रही थी, गालियाँ दे रही थी, चिल्ला रही थी और बकोट रही थी।

हल्लागुल्ला सुनकर आसपास के तमाम लोग घर में घुस आये। उनलोगों ने झगड़ा छोड़ाना शुरू किया। इधर पुनाई सिंह के हाथ में एक लाठी लग गई। वे भी उस झगड़े में शामिल हो गये। उन्होंने कोसी को खींच कर रुक्मिणी से छुड़ाया और डंडे से बेतरह मारना शुरू किया। लोगों ने उन्हें समझाया, रोकने की कोशिश भी की; लेकिन पुनाई सिंह पर न जाने कौन-सा भूत सवार हो गया था कि उनका हाथ नहीं रुका। भली भाँति मारने के बाद पुनाई सिंह ने कहा !--अब मौसी के यहाँ जायगी न ; जा, भाग, हरामजादी !

कोसी ने अपने बच्चे को गोद में उठा लिया और पुनाई सिंह तथा उनकी धर्मपत्नी को गालियाँ देती हुई घर से निकल गई। घर से निकलकर यकायक वह चली ही नहीं गई। दरवाजे पर बैठ कर सबको गालियाँ सुनाने लगी और सारे गाँव को वहाँ जमा कर लिया। जिस गौरवपूर्ण खान्दान की प्रतिष्ठा का पुनाई सिंह सदा खयाल रखते थे उस खानदान के नाम पर भी कोसी ने असंख्य कुवचन कहे। कोसी का हृदय सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति विद्रोही हो उठा था। उसे समझ नहीं थी कि वह क्या कर रही है। दिनभर वह वहीं भूखी-प्यासी बैठी रही और गालियाँ बकती रही। आज उसने किसे गाली नहीं दी। माता-पिता, मौसी, पुनाई, रुक्मिणी, गाँववाले, किसी को भी नहीं छोड़ा। गालियों के सिलसिले

में उसने अपना सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त भी बतला दिया। जब शाम होने को आई तो वह वहाँ से उठ गई और एक ओर चल पड़ी। उसे रोकने की किसी को हिम्मत नहीं थी। पुनाई सिंह से मुफ़ में रार लेना उचित नहीं था। सिर्फ एक बूढ़े ब्राह्मण बेचारे ने कोसी से कहा...शाम को अभी कहाँ जाओगी। मेरे घर चलो। फिर कल तुम्हारा जहाँ मन आवे चली जाना। लेकिन कोसी ने उसे भी झाड़ दिया।

उस गाँव से स्टेशन तीन कोस की दूरी पर पड़ता था। कोसी रात को वहाँ पहुँची। पहुँचने पर मालूम हुआ कि पटने की गाड़ी कल सबेरे-आठ या नौ बजे मिलेगी। रात भर कोसी की आँखों में नींद नहीं थी। वह अपने बच्चे को छाती से चिपकाये रेलगाड़ी की आशा देख रही थी। उसका मुखमण्डल गम्भीर था। वह सोच रही थी कि पहले वह पटना जायगी, वहाँ जाकर सबसे पहले मनोज से मिलेगी। उससे मिलने के बाद देखा जायगा। और नहीं तो भीख माँगना तो कहीं गया नहीं है। आगे के लिये भगवान मालिक हैं।

दूसरे दिन सबेरे उसे पटने की गाड़ी मिली। रेलगाड़ी मुसाफिरों से खचाखच भरी हुई थी। कोसी जाकर जनाने डब्बे में चढ़ गई। उसने देखा कम्पार्टमेंट की सारी स्त्रियाँ खुश हैं, प्रसन्नता पूर्वक एक दूसरे से बातचीत कर रही हैं। यदि वहाँ कोई दुखी और चुप थी तो कोसी। दूसरी स्त्रियां तो चर्खे की तरह बातों को ओटे जा रही थीं। उनकी बातचीत के विषय थे ब्याह, गौना, गहने और साड़ियां। इतनी ही बातों के अन्दर उनकी सारी दुनियां समाप्त हो गई थी।

और इतनी ही बात के अन्दर बातों की कितनी शाखाएं फूट सकती हैं, कितना विशद वर्णन हो सकता है, कितनी युक्ति के साथ लम्बा कथोपकथन चल सकता है इसका वह कम्पार्टमेंट मानों एक उदाहरण था। कोसी चुपचाप बैठी हुई सोच रही थी कि पटना में मनोज से भेंट करके वह उससे क्या कहेगी और मनोज उसे क्या जवाब देगा। कभी उसके मन में सुख की कल्पनायें आतीं कभी दुख की। कभी अपने में आशा पाती थी, कभी निराशा। गाड़ी चली जा रही थी। स्टेशन आते थे और छूट जाते थे। कोसी अपने ध्यान में मग्न थी। वह पुरानी बातें सब भूल गई थी। अभी-अभी क्यों और किस कारणवश जो वह पटने जा रही है यह सब कुछ भूल गई थी। मनोज ही उसका केन्द्रबिन्दु हो रहा था। उससे मिलना ही एकमात्र उसके जीवन का उद्देश्य हो रहा था। यद्यपि वहाँ आशा नहीं थी फिर भी कोसी आशा का पल्ला छोड़ना नहीं चाहती थी। आदमी भी बड़ा विचित्र है।

पटना स्टेशन पर पहुँच कर उल्लास से उसका मन भर उठा। जानी-बूझी हुई जगह थी। यहाँ के चप्पे-चप्पे से उसका परिचय था। इसी स्टेशन पर न जाने वह कितनी बार आई थी जिनकी अगाध स्मृतियाँ उसके मन में भरी पड़ी थीं। वह मुसाफिर-खाने में गई। वहाँ उसने तेल की पकौड़ी खरीद कर खाई। उसके मन में एक अजीब तरह की खुशी छाई हुई थी। वह एक-एक परिचित चीज को देख कर प्रसन्न हो उठती थी। उसे सबसे बड़ी खुशी इस बात की थी कि आज उसकी भेंट मनोज से होगी चाहे वह उसे झाड़ ही क्यों न दे। मगर वह उस पर दया अवश्य करेगा। न हो, कमाने-खाने का

कोई धंधा तो अवश्य ही निकाल देगा। कोसी ने सोचा, मैं उसकी कमाई थोड़े ही खाऊँगी। अपने लिये खुद कमाऊँगी। अकेला आदमी का क्या, मजे में चल जायगा। लेकिन जैसे जैसे वह हार्डिङ्गपार्क की ओर बढ़ रही थी वैसे-वैसे उसका दिल बैठ रहा था। जहाँ पर मनोज बैठा हुआ भीख माँगा करता था वहाँ पर कोई भी दिखलाई नहीं दे रहा था। वह फुटपाथ के उस स्थान पर पहुंच गई जहाँ मनोज बैठा करता था; लेकिन मनोज वहाँ नहीं था। कोसी के हाथ से मानों तोते उड़ गये। उसकी छाती पर एक बोझ-सा भहरा पड़ा। कलेजा धक हो गया। वह घबरा गई कि कहीं पार्क के अन्दर तो नहीं है। अन्दर भी मनोज का पता नहीं था। काले पत्थर पर बनी हुई हार्डिङ्ग साहब की मूर्ति उसी तरह खड़ी थी जिस तरह वह सदा से खड़ी रही लेकिन वह मनोज का कुछ भी पता नहीं बतला सकती थी। पार्क के फूलों का सौन्दर्य भी वही था, मगर कोसी को केवल मनोज को खोजने की धुन थी। वह बदहवास की तरह पार्क से निकल कर सड़कों पर घूमने लगी। अब उसे किसी भी परिचित चीज को देखकर खुशी नहीं होती थी। देखने की उसे फुरसत भी कहाँ थी। वह तो मनोज को खोज रही थी।

हार-दाँव देख कर वह उस जगह भी गई जहाँ वह अपने बाप के साथ रहती थी। उसे देख कर आश्चर्य हुआ कि उस जगह एक सुन्दर बंगला बना हुआ है और बाहर एक मोटर खड़ी है। मालूम हुआ कि उस कोइरी ने इस जमीन को बेच दी और अब लकड़ी का कारबार करता है। वह वहाँ से चल कर फिर हार्डिङ्गपार्क के फुटपाथ पर पहुँची। उसे खयाल था कि शायद मनोज वहाँ से उठ

कर कहीं चला गया होगा, अब तो आ जाना चाहिये। उसका इस बार का आना भी विफल ही हुआ। वहाँ मनोज नहीं था। कोसी उसी स्थान पर खड़ी हो गई। एक भिखमंगा अपने हाथ में टिन का एक पात्र लेकर लंगड़ाता हुआ स्टेशन की ओर जा रहा था। कोसी ने उससे मनोज के विषय में दरियाफ़्त किया। उसने कहा—मैं इधर से रोज आता-जाता हूँ; लेकिन यहाँ बैठे हुए किसी भिखमँगे को अबतक नहीं देखा।

कोसी के सिर पर मानों पहाड़ टूट पड़ा। जिस सहारे की उसे आशा थी वह भी नहीं मिली।



१७

नेकलेस के सम्बन्ध में अप्रिय बात हो जाने पर भी केतकी और मनोज की प्रीति में कोई कमी नहीं आई। दोनों यह स्पष्ट देखते थे कि गुलनार अब केतकी से घृणा करती है और उसे देखते ही मुँह फेर लेती है। मनोज उन दिनों एक अजीब उलझन में था। वह केतकी को प्यार भी करता था और गुलनार को नाराज भी नहीं करना चाहता था। विचित्र परिस्थिति थी। मनोज इस ओर से पिंड छुड़ाने के लिये फुरसत के वक्त भड़ुओं की मंडली में शरीक होता; लेकिन वहाँ भी ताश खेलने में उसका मन नहीं लगता था। नाच-गान और तबला-शारंगी की चर्चा भी वह विमन-होकर सुनता था। तबीयत उचटी रहती थी। वहाँ से ऊब कर घर लौट आता था और केतकी के साथ गप-शप, हँसी-मजाक करने लगता था। एक दिन वह दिनभर बाहर ही बाहर रहा। जब शाम होने को आई तो वह घर लौटा। वहाँ पहुँचकर उसने सुना कि आज केतकी की तबीयत खराब है, आज वह नहीं बैठेगी।

उस समय गुलनार केतकी के समीप खड़ी थी और केतकी कह रही थी—कह तो दिया मेरी तबीयत खराब है। मैं महफिल में नहीं बैठ सकती।

गुलनार ने गम्भीर, पर कड़ी आवाज में कहा—यह तो

अच्छी बात नहीं है। केतकी लेटी थी, उठकर बैठ गई और तेज होकर बोली—तुम समझती हो कि मैं झूठमूठ बहाना कर रही हूँ।

गुलनार ने कहा—सो मैं कैसे जान सकूँगी। दिन भर तुम्हें कुछ नहीं था, अभी एकाएक तबीयत खराब हो गई, यही बात समझ में नहीं आती।

केतकी ने कहा—तुम बदन छूकर देख लो, बुखार है या नहीं।

गुलनार ने उसका माथा छुआ, नाड़ी देखी और कहा—बुखार तो कुछ भी नहीं है। बहाना क्यों करती हो!

मनोज खड़ा-खड़ा यह सब देख रहा था। केतकी पर अनुचित दबाव उससे देखा नहीं गया। बोल उठा—जब इसका जी नहीं है तो छोड़ दो। एक दिन में कौन-सा हर्ज हुआ जाता है।

गुलनार ने एक बार तीव्रदृष्टि से उसकी ओर देखा और चुपचाप वहाँ से चली गई। उसके बाद केतकी मनोज की ओर देखकर मुसकिराती हुई बोली—देखते हो न तमाशा; चाहती है कि घोलकर पी जायँ। अब यहाँ मेरा निर्वाह नहीं होगा। अब मैं आजाद होकर अपना अलग पेशा करूँगी। तुमने अगर मदद दी तो दी और नहीं तो किसी दूसरे का दामन पकड़ूँगी।

मनोज ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोला—मुझे भी यह सब अच्छा नहीं लगता। गुलनार तुम्हें देख भी नहीं सकती। आज-कल में ही चलो, कोई दूसरा बन्दोबस्त कर लें।

केतकी उत्फुल्ल होकर बोली—सच कहते हो; तुम्हें मेरी कसम!

मनोज ने हँसकर उसे आश्वासन दिया कि वह बिल्कुल सच कह रहा है। इसके बाद हिसाब जोड़े जाने लगे। कितना घर का किराया देना पड़ेगा, धोबी की धुलाई कितनी पड़ेगी, कौन-कौन से भड़ुओं को सारंगी और तबला के लिये रखना उचित होगा। मनोज ने अपनी शराब का खर्च काट दिया था। केतकी ने उस हिसाब में अपने पान का खर्च बहुत ही कम रखा था; लेकिन फिर भी पूरा नहीं पड़ता था। इतने रुपये मनोज के पास नहीं थे। नेकलेसवाली बात को लेकर कितना तूल-तवील हुआ वह घटना भी अभी की ताजी थी। गुलनार से लेने का साहस नहीं था। केतकी की अक्ल कुछ काम नहीं कर रही थी, मनोज भी युक्तियाँ पर युक्तियाँ निकालता था, मगर कोई उपाय कारगर प्रतीत नहीं होता था। दरवाजे के पर्दे भी चाहिये, फरनीचर भी चाहिये, फर्श, मसनद हर चीज की तो जरूरत ही जरूरत थी। बड़ी मुश्किल थी। मनोज भी वहीं बैठा रहा। अपनी दलाली के लिये नहीं जा सका।

दूसरे दिन खाने-पीने के बाद मनोज जरा लेटने के लिये जा ही रहा था कि गुलनार ने आकर कहा—एक काम तो करो।

क्या ?—मनोज ने उसकी ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा।

गुलनार के हाथ में एक चेक था। उसे मनोज के हाथ में देती हुई बोली–बैंक से इसके रुपये तो ले आओ।

मनोज ने उसे लेकर पढ़ा, वह अढ़ाई सौ रुपयों का चेक था। इस समय दोपहर को उसे बैंक जाना बड़ा नागवार गुजरा। चेक लेकर वह पूछना चाहता था कि इन रुपयों का क्या होगा; लेकिन पूछा नहीं। चुपचाप साइकिल उठाई और चला गया। बैंक में

उसे बड़ी देर लग गई। लेनेवालों की काफी भीड़ थी। इतनी देर होने की उसने कल्पना भी न की थी। वह झुँझला उठा थोड़े से सूद के लोभ पर आदमी बैंकों में रुपये डाल देते हैं; लेकिन उसे निकालते समय कितना कीमती वक्त नुक्सान होता है जिसका ठिकाना नहीं। आज का सारा दिन मुफ्त में बरबाद गया। शाम को वह नोट लेकर घर पहुँचा। गुलनार ने उन रुपयों को केतकी को सिपुर्द कर दिया और बोली—ये तुम्हारी कमाई के रुपये हैं। अब हमलोगों को तुम्हारी जरूरत नहीं रही। चाहो तो आज की ही गाड़ी से तुम बनारस जा सकती हो।

केतकी ने अवाक् होकर गुलनार की ओर देखा फिर दूसरे ही क्षण लज्जित होकर उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

मनोज दंग था। उसकी हिम्मत नहीं थी कि इस बात में कुछ बोले। वह जानता था कि केतकी को मुझ से छुड़ाने की यह तरकीब है। लेकिन उसे आश्चर्य होता था कि गुलनार इस मोटी बात को भी नहीं समझती कि केतकी के चलते आमदनी कितनी है। वह गुलनार पर क्रुद्ध हो रहा था। उसका चेहरा भारी हो गया था। मन की डिग्री सदा एक तरफा ही हुआ करती है।

केतकी के होठों की हँसी मर गई थी। वह खिन्न होकर वहाँ से विदा हुई। स्टेशन पर मनोज का हाथ अपने हाथ में लेकर वह सिसक उठी। वही तो केतकी के स्वतंत्र हो सकने का अन्तिम सहारा था वह नहीं मिला। अब वह जा रही थी।

केतकी को चले जाने से मनोज के दिल पर बड़ी कड़ी चोट लगी। वह सदा अपने कमरे में लेटा रहता। यदि गुलनार कुछ पूछने

आती तो झुँझला कर जवाब देता। बुढ़िया इस मामले में बिल्कुल बेकसूर थी। केतकी के चले जाने का सदमा उसे भी था, रुपयों के लिये ही सही; लेकिन मनोज उस बुढ़िया को भी फूटी आँखों नहीं देखना चाहता था। कभी-कभी ऐसी जलती हुई बात कह देता कि बुढ़िया स्तम्भित हो जाती।

एक दिन गुलनार ने उससे कहा—मैं जो अच्छा समझती हूँ वह करती हूँ। तुम भी अगर अच्छा समझते हो तो केतकी को फिर से बुलवा लो।

मनोज ने उसकी ओर गुस्से से देखा और गम्भीर होकर जवाब दिया—मैं तुम्हारी मर्जी के खिलाफ नहीं जाना चाहता।

गुलनार ने पूछा—तो तुम खुश क्यों नहीं रहते?

मनोज झेंप कर हँसने लगा। आज उसे गुलनार के अन्दर अपने प्रति सच्ची हमदर्दी मिल रही थी। उसकी उदासी देखकर गुलनार ने केतकी को फिर से बुलाने का प्रस्ताव किया था।

लेकिन केतकी के बिना उसके दिल में जो सूनापन भर गया था वह गुलनार के प्रति मन साफ हो जाने पर भी दूर नहीं हो सका। गुलनार उसकी एक एक बात पर निगाह रखती थी। शराब पर रोक लग गई थी। इतनी शराब तुम्हें नहीं पीनी चाहिये। सिगरेट का खर्च भी कम कर दिया गया था। आदमी के लिये दिन भर में दस सिगरेट काफी है। केतकी की ओर से उसे इस दिशा में प्रोत्साहन मिलता था और गुलनार अब उस पर रोक लगाती थी। इसी तरह की और भी बहुत-सी बातें थीं।

आमदनी अब पहले से बहुत कम हो गई थी। गुलनार

इसके लिये चिन्तित रहती। एक दिन बुढ़िया ने कहा—फिर किसी को बुलाया जाय। ऐसे तो नहीं चल सकता। मैं सोचती हूँ बनारस से दो छोकरियों को बुलावें।

गुलनार ने सिर हिला दिया—जब तक मनोज का कोई ठौर-ठिकाना नहीं हो जाय तबतक मैं किसी को नहीं बुलाऊँगी।

लेकिन खर्च कैसे चलता। आमदनी तो बहुत ही कम हो गई थी। गुलनार किसी दिन बैठती किसी दिन नहीं बैठती। अत्यधिक व्यभिचार के कारण उसे सिफलिस की बीमारी भी हो गई थी। वह डाक्टर को बुलाकर प्रति सप्ताह इसके लिये सूई लेती थी। इससे बीमारी दब जाती; लेकिन अच्छी होने पर वह फिर बैठती और फिर बीमारी उभर आती। इसी तरह काफी दिनों तक चला; लेकिन अब नहीं चल सकता था। अबकी जो उसकी बीमारी उभरी थी वह बड़े जोर से उभरी थी। उसने चारपाई पकड़ ली और मनोज से कहा—अजी, तुम दूसरों की दलाली क्यों नहीं करते। मुझसे तो बेड़ा पार नहीं लगेगा।

मनोज ने परिस्थिति को देखकर स्वीकार कर लिया यद्यपि वह इसके पक्ष में था कि इसी घर में बुलाकर दूसरी रंडियो को नौकर रखा जाय और पैसे कमाये जायँ। मगर जब तक गुलनार इस बात की हामी नहीं भरती थी तब तक वह लाचार था।

वह दूसरी वेश्याओं के यहाँ दलाली करता और घर का खर्च चलाया करता था। वहाँ उसे ऐसी स्वतंत्रता नहीं थी। शाम को वह दलाली करता था और दिन को सबेरे से लेकर शाम तक वेश्यायें उसे दूसरे-दूसरे कामों में व्यस्त रखती थीं। गुलनार के यहाँ का सुख

और कहाँ ? गुलनार की हालत दिन-ब-दिन खराब ही होती जाती थी; लेकिन फिर भी उसे विश्वास था कि वह अच्छी हो जायगी। उसे मनोज का घर बसाने की बड़ी चिन्ता थी। जिस किसी से भेंट होती उससे वह यह जिक्र अवश्य किया करती। कहती, कोई अच्छी-सी लड़की मिल जाती तो मुझे चैन आ जाता। लोग हाँ-हूँ करते; लेकिन गरज किसे थी जो मनोज के लिये लड़की ढूँढ़ता फिरे। सो भी एक ऐसे आदमी के लिये जो रंडी के यहाँ दलाली करता हो। बुढ़िया कहती थी अगर मनोज मुसलमान होता तो उसे लड़कियों की कमी नहीं होती। लूला होने से क्या होता है।

मनोज को अस्पताल में काफी दिनों तक रहना पड़ा था। वहाँ का उसे अनुभव था। दवा किस समय दी जाती है, खाना कैसे खिलाया जाता है, यह सब वह जान गया था। फुरसत मिलते ही वह गुलनार की सुश्रूषा में जुट जाता। इस काम में उसका मन लगता था। लेकिन गुलनार की अवस्था दिनोदिन खराब ही होती जा रही थी। बदन पर चकत्ते पड़ कर चेहरा खराब हो गया था। देखने में वह भयावनी मालूम होती थी। वहाँ पहले के सौन्दर्य की अब परछाहीं तक नहीं थी। शरीर पर जो चकत्ते थे उन्होंने घाव का रूप धारण कर लिया था। गुलनार को इससे असह्य यंत्रणा थी; लेकिन किसी पर प्रकट नहीं होने देती थी। इसी तरह चल रहा था। मनोज की शौकीनी भी अब छूट गई थी। सदा साधारण वस्त्रों में रहता। दूसरी वेश्याओं के यहाँ उसकी वैसी धाक नहीं जमने पाती थी। वे दूसरा दूसरा काम लिया करती थीं और मनोज मनही मन झुँझलाया करता था। उसे अपने पेशे से घृणा हो गई थी। अब

तो उत्थान की उज्ज्वलता नहीं थी, पतन का अन्धकार था। चाहता था कि इस पेशे को छोड़ दे; लेकिन छोड़ना कठिन था। वही घर का खर्च चलाता था। गुलनार बैंक के रुपयों में हाथ न लगाती थी। और सबसे बड़ी बात थी काम की। पहले मनोज अपने मन के अनुकूल काम करता था। सफलता भी उसे काफी मिलती थी। अब तो और भी दूसरे-दूसरे बहुत से दलाल भर गये थे। उस समय तो यह बात थी कि रोज कुछ न कुछ लोग मिल ही जाते थे और आमदनी भी अच्छी हो जाती थी। दूसरी वेश्याओं के यहाँ मन के मुताबिक काम करने की सुविधा नहीं थी। उनके यहाँ काम की परिपाटी बँधी हुई थी और उसीके अनुसार काम करना पड़ता था। वेश्याएं मनोज को प्रायः उन्हीं लोगों के पास भेजती थीं जिनसे उन्हें कुछ उम्मीद होती। मनोज को इसमें तनिक भी स्वतंत्रता नहीं थी। अब भी वह सोचा करता था कि यदि उसे उसके मन के मुताबिक ही काम करने को छोड़ दिया जाय तो वह काफी कमा लेगा और वेश्याओं को भी आमदनी होगी। वह झुँझलाता था, मगर लाचार था।

गुलनार के यहाँ उसकी आत्मप्रतिष्ठा कायम थी, बल्कि कहें तो कहेंगे कि बढ़ती ही जाती थी; लेकिन यहाँ कोई गुँजाइश नहीं थी। वेश्याओं की ओर से उसे प्रायः ऐसे गृहस्थ लोगों के घर में जाना पड़ता था जो उसे देखकर झुँझला उठते थे। अक्सर झाड़ देते कि तुम मौका देख कर अकेले में क्यों नहीं आते, जिस समय आदमी बैठे रहते हैं उसी समय पहुँच जाते हो। वह लोगों के घर में जाता हुआ शर्माता था मगर उसे जाना ही पड़ता था।

वेश्याओं के यहाँ आनेवाले भी अजब लोग होते हैं। मुन्नीजान के यहाँ एक आदमी आया हुआ था। जाते समय वह एक जाली नोट देकर चला गया। उसने अपने को सेक्रेटेरियट का कर्मचारी बतलाया था। दूसरे दिन मुन्नीजान ने मनोज के हाथों में उस नोट को सिपूर्द करके कहा—जरा गरदनीबाग चले जाओ और नोट को बदल लाओ।

मनोज ने नोट तो ले लिया, मगर लाचारी दिखला कर बोला—ऐसे हवाई आदमी को कहाँ-कहाँ खोजता फिरूँगा। उसने कुछ पता-ठिकाना तो बतलाया नहीं है। और क्या यह भी सच हो सकता है कि वह सक्रेटेरियेट में ही काम करता होगा?

मुन्नी आज्ञा के स्वर में बोली—तुम जाओ!

गुलनार के यहाँ वह स्वतंत्र था यहाँ परतंत्र था। आज्ञा हर सूरत से माननी ही पड़ती थी। अब उसे होश होता था कि केतकी को साथ लेकर अलग हो जाने में उसकी क्या दुर्दशा थी। यह तो ठीक था कि केतकी आजाद होकर ज्यादा कमाने की धुन में परीशान थी। मनोज के प्रति उसका सारा प्यार इसीके लिये था। अब मनोज सोचा करता था कि जब उसका सिलसिला जम जाता, धाक बँध जाती तब मनोज की उसके सामने क्या स्थिति होती। वह तो जैसे उसके सिर पर पैर देकर खड़ी होना चाहती थी।

आज मनोज का हृदय खिन्न था। हृदय में उदासी भर गई थी। गुलनार की तबीयत अच्छी होने पर नहीं आ रही थी। बीमारी दिनोंदिन बढ़ती ही जाती थी। आज सबेरे तो उसकी हालत और भी खराब थी। इस समय वह गुलनार के पास उसकी सुश्रूषा के

लिये बैठता; लेकिन परिस्थितियों से लाचार होकर वह एक अज्ञात आदमी को खोजकर उससे नोट बदलने जा रहा था।

मनोज इक्के पर बैठा हुआ था और उसके मन में बहुत-सी बातें उमड़ रही थीं। वह इन्हीं सड़कों पर भीख माँगता हुआ घूमा करता था। जगह-जगह के घर टूट कर अब नये बन गये थे। स्टेशन के समीप पहुँच कर वह एक पेट्रोल की दूकान को देखता हुआ यह विचार करने लगा कि उस समय यह दूकान थी या नहीं। शायद नया बना है। सहसा उसे स्मरण हो आया कि यह दूकान पहले की थी और इस दूकान में रहनेवाले ने एक दिन उसे एक पैसा भी दिया था। उस समय भी वह क्या था। लेकिन उस समय वह बुरा था ऐसा मनोज ने नहीं सोचा। उसने उस मुसाफिरखाने की ओर आँखें उठाईं जहाँ पहले वह रहा करता था। मुसाफिर खाना तो उसे दिखलाई नहीं दिया; लेकिन वहाँ की बहुत-सी बातें उसे याद हो आईं। इक्के के आगे बढ़ने पर उसने देखा कि हार्डिङ्गपार्क की फुटपाथ पर जिस जगह बैठ कर वह भीख माँगा करता था ठीक वहीं पर बैठा हुआ कोई आदमी भीख माँग रहा है। मनोज को बड़ा कुतूहल हुआ। कुछ और आगे बढ़ने पर उसने देखा कि वह कोई औरत है, उसकी गोद में एक बच्चा है। नजदीक पहुँच कर वह स्तम्भित रह गया। अरे ! यह तो कोसी है !

इक्का निरंतर आगे बढ़ता ही जा रहा था। मनोज जल्दी से बोला—जरा रुको तो !

इक्का खड़ा हो गया। मनोज लपका हुआ उसके सामने जाकर खड़ा हुआ। वह सचमुच कोसी थी।

कोसी ने दाता समझ कर हाथ फैलाया था; लेकिन उसके हाथ ज्यों के त्यों अचल हो गये। मनोज को देख कर वह भी आश्चर्य से चकित हो गई थी।

कोसी! तुम?—मनोज ने कहा।

कोसी उसकी ओर देखती हुई बोली—मैं तो निराश हो गई थी। मैं यहाँ छः महीने से बैठ कर रोज तुम्हारी आशा देखती थी। भाग्य था जो तुमसे भेंट हो गई।

मनोज असमंजस में पड़ा। कई मिनट तक स्तब्ध खड़ा रहा, फिर एकाएक दृढ़ता से बोल उठा—खैर, तुम मेरे साथ चलो।

मनोज ने उसे लाकर इक्के पर बिठाया और इक्केवाले को वापस चलने का हुक्म दिया। इस समय वह व्यस्त और घबराया हुआ सा दिखलाई दे रहा था। मन ही मन वह अपने को स्थिर कर रहा था कि कोसी को कैसे लेकर गुलनार के सामने जायगा, उससे क्या कहेगा। उस समय उसे दुख मालूम होता था कि उसने गुलनार से कोसी की बात कभी कहा क्यों नहीं। यदि कभी उसे कहा होता तो वह जानती होती।

लेकिन इसमें उसका कोई कसूर नहीं था। उस भीषण बीमारी से उठने के बाद वह कोसी को बिल्कुल भूल गया था। वहाँ उसकी परिस्थिति भी बदल गई थी। कोसी की याद आती भी थी तो कभी-कभी, क्षण-भर के लिये; और वह भी एक मामूली और पराई स्त्री की तरह। उसने कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि अब कभी वह कोसी को देखेगा। वह जहन्नुम में गई, मर गई या बिला गई, इसकी उसे कोई जरूरत नहीं थी। यह कल्पना तो एक असम्भव

कल्पना थी कि कभी कोसी उसे मिलेगी भी और उसके साथ जाना भी चाहेगी। इसी कारण अभी एकाएक वह कोसी को पाकर कुछ ठीक से सोच नहीं सकता था कि वह उसे क्या करे। ऐसी दीन दशा में उसे अकेली छोड़ना भी तो उचित नहीं था।

राह में मनोज ने कोसी से अपनी स्थिति के बारे में कहा—मैं एक रंडी के यहाँ हूँ। उसे ही मेरी माँ समझो, बहन समझो, जो समझो, मेरी एक वही है।

फिर वह अपनी उत्सुकता छिपा नहीं सका। पूछा—तुम कहाँ थी ?

कोसी ने संक्षेप में अपना किस्सा कहा। कहा कि तुम्हारे सिवा मेरा अब कोई सहारा नहीं है। इसी अवलम्ब के लिये मैं यहाँ आई। उसके चेहरे पर दृढ़ता थी। बातों के अन्दर अपने किये का कोई पश्चात्ताप नहीं था। उसने यह भी कहा—अगर तुम मुझे अपने साथ न रखना चाहो तब भी कोई हर्ज नहीं। मैं भीख माँग कर अपना निर्वाह कर लूँगी।

मनोज ने इसका कोई जवाब न देकर पूछा—तुम्हारी मौसी कहाँ है ?

कोसी ने कहा—वह अपने गाँव में ही है। मजे में है।

दोनो घर पहुँचे। घर बंगलानुमा था और सुन्दर था। दरवाजे पर क्रोटन और पाम के गमले रखे हुए थे। बारामदे में चीन देश की किसी रमणी की एक बहुत बड़ी तस्वीर लटक रही थी। चौखट पर सुन्दर और रंगीन पर्दा झूल रहा था। कोसी चकित होकर बोली—बड़े अच्छे घर में रहते हो तुम तो!

उसके मन में उल्लास आ रहा था। वह मनोज पर गर्व करना चाहती थी।

मनोज ने एक लम्बी सांस लेकर कहा—हाँ, ऐसे घर में हमीं लोग रह सकते हैं!

ऊपर जाने के लिये बाहर से ही सीढ़ी थी। दोनों सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। मनोज यद्यपि असमंजस में था, चंचल था, फिर भी अपने को स्थिर, संयत और गम्भीर दिखलाने का प्रयत्न कर रहा था। गुलनार पलंग पर पड़ी हुई कराह रही थी। उसका चेहरा घाव के कारण खराब हो गया था। वह बड़ी बदसूरत मालूम हो रही थी। देखने से डर लगता था। उसे देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि थोड़े ही दिन पहले यह इतनी सुन्दरी थी कि उसके पीछे युवक लट्टू होकर दौड़ते थे। मनोज उस कमरे में घुसा तो कोसी दरवाजे पर ठिठक गई। मनोज ने कहा—चली आओ, अन्दर आ जाओ; शर्माने की कोई बात नहीं।

कोसी झिझकती हुई जल्दी से अन्दर घुस गई मानों उसे किसी ने पीछे से ठेल दिया हो। उसने गुलनार को देखा और समझ गई कि यह कौन है।

गुलनार ने उसे देख कर आश्चर्य से पूछा—यह कौन औरत है?

मनोज ने कहा—मेरी बीवी है।

बीवी! तुम्हारी?—गुलनार चौंक उठी। उसका हृदय आश्चर्य और कुतूहल से भर उठा। बोली—तुम ने मुझ से पहले क्यों नहीं कहा था?

मनोज ने कहा—इसका भी एक किस्सा है। मैं ने इससे शादी की थी; लेकिन जिस दिन शादी हुई उसी दिन यह अपनी मौसी के साथ भाग गई।

और यह आज आई है?—गुलनार ने पूछा।

आई नहीं है मिल गई है!—मनोज ने हँसकर जबाब दिया।

गुलनार पलंग पर जरा सिकुड़ गई और कोसी को उस पर स्थान देती हुई बोली—आओ बहन, खड़ी क्यों हो; आकर बैठ जाओ।

कोसी जरा झिझकी फिर सकुचाती हुई बैठ गई। वह अपने को रोक नहीं सकती थी। उसके होठों पर आप से आप एक मुसकिराहट उमड़ी आ रही थी। इस बेहया मुस्कान को रोकने की चेष्टा करती हुई वह लजा रही थी।

गुलनार ने मनोज की ओर देखा और हँस दिया। मनोज भी मुसकिरा रहा था। उसे एक तरह की झेंप मालूम हो रही थी कि गुलनार को कोसी शायद पसंद हो या न हो। एक विचित्र असमंजस का भाव था।

गुलनार अपनी दोनों बाँह को आगे बढ़ाकर कोसी की गोद से बच्चे को लेती हुई बोली—यह लड़का किस का है?

फिर मनोज की ओर देखकर पूछा—तुम्हारा?

मनोज ने कहा—लड़का तो इसका है!

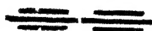
गुलनार हँसने लगी। इस हँसी में घृणा और विरक्ति का लवलेश भी नहीं था। वह जानती थी कि दुनिया क्या है, यहाँ उत्थान और पतन किसे कहते हैं। परिस्थिति के सिवा बस नाम का भेद है।

गुलनार हँस कर चुप हुई और धीरे से बोली—खैर, मेरा एक सपना तो पूरा हो गया। तुम्हें तुम्हारी औरत मिल गई।

सचमुच वह बहुत खुश थी यद्यपि उसका चेहरा खराब हो गया था लेकिन फिर भी उसकी प्रसन्नता छिपाये नहीं छिपती थी। अपनी अशक्तावस्था में भी वह चंचल हो रही थी। उसने पूछा—बच्चे का नाम क्या है?

कोसी लजा कर धीरे से बोली—लल्ला!

आज वह जैसे नववधू हो रही थी। ऐसा मालूम हो रहा था मानों बहुत दिन परदेश में रहने के बाद आज वह ससुराल लौटी हो।



उपसंहार

कोसी को पा जाने पर भी मनोज को कोई प्रसन्नता नहीं थी—हो भी नहीं सकती थी। होती कैसे, गुलनार की हालत दिनोदिन खराब होती जाती थी। रोज वह धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो रही थी। उसने खुद भी अपनी आशा छोड़ दी थी। मनोज ने दलाली की ओर से अपना ध्यान हटा लिया था। सदा कोसी के साथ गुलनार की सेवा में रत रहा करता था। आशा के अवलम्ब पर अक्सर डाक्टर बदले जाते थे। डाक्टरों ने सान्त्वना तो दी मगर किसी ने भरोसा नहीं दिया।

गुलनार बड़े कष्ट में थी। वह सदा बेचैन रहती थी। उसकी शारीरिक और मानसिक दोनों हालत खराब थी। उसके मन में एक बात का बहुत कष्ट था। वह सदा इस बात को दुहराया करती थी कि मेरे चलते दुनिया की कोई खराबी नहीं हुई; जो उससे मिले उन्हें सुख ही दिया; लेकिन किसी ने भी उसके साथ सहानुभूति नहीं रखी, किसी ने भी उसे सुखी बनाने की कोशिश नहीं की। किसीने भी उसके दिल की हालत को जानना नहीं चाहा। नाली में पड़े हुए पिल्लू से अधिक उसकी जिन्दगी का कोई महत्त्व नहीं रहा।

उसका घाव सड़ गया था। वह अत्यन्त भयानक मालूम होती थी। पलंग पर उठ कर बैठ भी नहीं सकती थी। अपने दुख पर

उसे खुद रहम आता था और वह कहती थी—खुदावन्दा करीम, मैंने किसी का क्या कुसूर किया था जो मुझे इतनी तकलीफ दे रहे हो ?

घर के खर्च और दवाइयों के लिये गुलनार के गहने बिक रहे थे। गुलनार बैंक से रुपया निकालने को कभी सहमत नहीं होती थी। वह उसकी गाढ़े पसीने की कमाई थी। उसने उन रुपयों को बड़े यत्न से बचाया था। वह कहती थी—मैं अपनी जिन्दगी भर उन रुपयों में हाथ न डालूँगी। वह तुम लोगों के लिये है। मेरे मर जाने के बाद चाहे जैसे खर्च करना। भरसक कोई दूसरा कारबार करना।

मनोज सिर झुकाकर आँसू पोंछ लेता। कोसी उसके मुँह पर हाथ रखकर कहती थी—ऐसा न कहो दीदी !

उन तकलीफ के दिनों में कोई उस बुढ़िया की ओर ध्यान नहीं दे पाता था। वह सदा गुलनार के सिरहाने बैठी रहती और रोती रहती थी। गुलनार उसे समझाती थी—अम्मा, मेरे न रहने पर भी मन्नूभाई तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होने देंगे।

बुढ़िया सुनकर रोती थी और दीवार से अपना सिर टकरा देती थी। गुलनार उसकी बेटी भी नहीं थी मगर बेटा से भी बढ़कर थी। उसने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि इस बुढ़ापे में उससे पहले ही गुलनार उसे छोड़कर कब्र में चली जायगी। पहले तो उसे जाना था। इस बात से उसे बड़ी रुलाई आती थी। उसे जरा भी चैन नहीं था। डाक्टरों के पैरों पर वह गिर-गिर पड़ती। कोई भी तो उसे भरोसा दे देता, कोई भी तो कह देता कि गुलनार जी जायगी।

लोगों को भरोसा था कि गुलनार कुछ दिन और जीयेगी। कम से कम अक्तूबर तक वह अवश्य टिक जायगी। लेकिन बारह अगस्त को ही उसकी हालत बिगड़ गई। उसे कुछ भी होश नहीं रहा और नाड़ी क्षीण हो गई थी। उसी रात को जो उसकी आँखें बन्द हुईं सो फिर नहीं खुलीं। तेरह अगस्त के दस बजे दिन तक क्षीण साँसों के बल पर प्राण अटके रहे, उसके बाद सब समाप्त हो गया।

उस दिन मूसलधार वर्षा हो रही थी। मालूम होता था जैसे प्रकृति बावली हो गई हो। मुहल्ले के कुछ थड़े-से भड़ुए और दलाल लोग गुलनार की लाश को दफनाने जा रहे थे। सबके चेहरे पर विषाद था। पानी बरस रहा था। लाश के साथ जाने वाले सभी भींग रहे थे। सबके कपड़े पानी से लथपथ हो रहे थे। उनलोगो के कन्धे पर के सब्ज ताबूत में कफन से लिपटी हुई गुलनार पड़ी थी। मनोज सबके पीछे-पीछे जा रहा था, निराश, व्यथित, कातर, चुपचाप और उदास।

॥ समाप्त ॥